भाग्य-चक्र

लेखक
प्रेमनाथ

इन्डिया पब्लिशिंग हाउस
30-B प्रहलाद मार्केट, करौल बाग
नई दिल्ली

प्रकाशक :
इन्डिया पब्लिशिंग हाउस
30 B प्रहलाद मार्केट
करौल बाग, नई दिल्ली

मुद्रक :
डिलाईट प्रेस
चूड़ीवालान, चावड़ी बाजार
दिल्ली-६

दो शब्द

इस संसार में जो भी लेना-देना तथा हँसना-रोना है सब भाग्य के ही अधीन है। कोई किसी के साथ कुछ भी नहीं कर सकता––न अच्छा और न बुरा ! निर्देशक एक है और अभिनेता अनेकों हैं ! जो वह चाहता है वही और उसी प्रकार का अभिनय होता है।

अतः इस उपन्यास की सारी घटनाओं पर भाग्य का प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है। इसीलिए इसका नाम "भाग्य-चक्र" दिया है। नाम तो अनेकों हो सकते हैं। किन्तु मुझे यही नाम उपयुक्त लगा। हो सकता है यह मेरे भाग्य का भी चक्र प्रमाणित हो।

यह जो उपन्यास "भाग्य-चक्र" आपके हाथ में है यह मेरा सर्वप्रथम उपन्यास है। परिश्रम मेरा है और पसन्द आपकी। आपकी पसन्द पर ही मेरे आगे लिखने की बात उठती है। अतः अभी मैं ऐसा कुछ भी नहीं कह सकता कि मेरा परिश्रम कहाँ तक सार्थक हुआ है। इतना अवश्य कहूँगा कि इसके लिए मेरे पास आपके जो भी निर्देश आयेंगे वही भविष्य में मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगे। तथा इसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा।

अन्त में मैं अपने मित्र श्री ए० एन० मलिक जी का हृदय से धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने मुझे आप तक पहुँचने का अवसर दिया।

प्रेमनाथ

८३२, बेगम गंज मुकवरा
फैजाबाद (उ० प्र०)

भाग्य-चक्र

: १ :

सन्ध्या का समय और अन्धकार बढ़ता ही जा रहा था। पूनमी अन्धेरी कोठरी में बैठी अपनी लाचारी पर आँसू बहा रही थी। आज घर में कोई भी उससे बात करना पसन्द नहीं करता। अब उसे डाइन समझने लगे हैं। कल तक सब उसके थे। सब उसको प्यार करते थे। किन्तु आज माता-पिता तथा भाई सब उसको लाल नेत्रों से देख रहे हैं। हाँ—कभी-कभी उसके भाई विवादी का हृदय उसके लिए भर आता था परन्तु स्थिति देख वह भी चुप था। वह लोग कहते हैं कि पूनमी मनहूस है। भाँवर पड़ते ही पति को खा गई और अब आगे देखो किस पर हाथ साफ करती है।

पूनमी को ऐसा लगा कि जैसे कोई कमरे में आया है। उसने अपने आँसू पोंछ डाले। भयभीत हो सिकुड़ कर बैठ गई। उसका हृदय भय से काँपने लगा। भगवान् ही जाने अब क्या दुःख आने वाला है? आने वाले की पदध्वनि और भी निकट आ गई। वह भय से काँपती हुई खड़ी हो गई।

आने वाले ने कहा "पूनमी बिटिया! शेखरू बाबू तुमसे मिलने आये हैं। बड़े कमरे में बैठे हुए हैं।"

उसे कुछ सान्त्वना मिली। यह स्वर तो उसके बूढ़े नौकर का था।

वह बोली "कौन बाबा? यह शेखरू बाबू कौन?"

नौकर ने बताया "तुम्हारे देवर ।"

वह चौंक पड़ी । शेखरू के समक्ष वह क्यों कर जायेगी ? उन्हें तो उसने देखा भी नहीं है । वह इन्हीं विचारों में खो गई और तब उत्तर देना भी भूल गई ।

विलम्ब होते देख नौकर ने पुनः कहा "बिटिया, क्या सोच रही हो···अब तो सोचने का समय नहीं रहा । वह तो तुम्हारे सगे और तुमसे छोटे हैं । उनसे संकोच करने से क्या लाभ ?··· आओ चलो ।"

और तब पूनमी बूढ़े नौकर के पीछे चल पड़ी । घर के लोग एक-एक कर सामने मिले किन्तु उन्होंने उस अभागिन की ओर से मुख मोड़ लिए, पूनमी ने इस प्रतिकूल वातावरण को लक्ष्य किया और तब उसे ऐसा लगा कि मानो किसी ने उसके चोट खाये हृदय पर आग की चिनगारी रख दी हो । उसने अपने आँचल से कपोल पर ढुलके हुए आँसुओं को पोंछ डाला । वह अब बड़े कमरे के सामने पहुँच चुकी थी । नौकर वहीं से वापस हो गया । वह भीतर गई । कमरे में बिजली का प्रकाश फैला हुआ था । सामने एक सुन्दर युवक को सोफे पर बैठा अपनी ही ओर दृष्टि जमाये पाया । वह ठिठक कर खड़ी हो गई । शेखरू आगे बढ़ा और पूनमी के पग छूने के लिए झुका । इस श्रद्धा पर पूनमी के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी ।

पैर की धूलि माथे पर लगाता हुआ शेखरू बोला "भाभी, आप रो रही हैं ? किन्तु अब रोने से क्या लाभ ? मुझे देखिये । मैं कहाँ रो रहा हूँ । मैंने तो सदा उनका प्यार ही पाया था । पर आप जिन्होंने उनको देखा भी नहीं । जिनके साथ क्षणमात्र को भी आपका सम्पर्क नहीं रहा । क्यों रोती हैं ? आपको भाभी कहने का सौभाग्य भइया द्वारा मिला है । पर अब 'भाभी माँ'

कहने की अनुमति प्रदान कर सेवा करने का भी अवसर प्रदान कीजिए। भइया ने जो कुछ भी मेरे साथ किया था उसके उप-लक्ष्य में यदि सारी आयु भी आपकी सेवा करूँ तो भी बदला नहीं चुका सकता।"

इतना कहते-कहते उसका स्वर काँप उठा। और तब नेत्रों से अश्रुधारा भी बह निकली। पूनमी इस अगाध प्रेम को देखकर एक बार फिर रो पड़ी।

वह आगे बोला "भाभी माँ, मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। यहाँ पर यह लोग आपको कष्ट देंगे ; मुझे कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है। बचपन से ही मुझे माँ का प्यार नहीं मिला। भाभी 'माँ' के तुल्य होती है। आप रहेंगी मैं माँ का प्यार पाऊँगा। आपकी सेवाकर भइया की सेवा का आनन्द उठाऊँगा।"

पूनमी इससे आगे न सुन सकी। वह विचार-मग्न हो चुकी थी। जिसका भाई इतने अच्छे आचरण का है वह स्वयं कैसा रहा होगा? हाय विधाता! तूने उनकी सेवा करने का शुभ अवसर मुझ अभागिन को क्यों न दिया ? कितना भोला है यह शेखरू! मुझे माँ कहने की अनुमति माँग रहा है। अपने भइया को यह कितना प्यार करता है ?··· कदाचित मैं उन्हें देख पाती ! उनके दर्शन कर पाती। उनकी पद-रज माथे पर लगा पाती। किन्तु नहीं पूर्व जन्म में मुझसे अवश्य ही कोई पाप हुआ होगा तभी तो यह दण्ड मिला है। मेरे माता-पिता तथा सम्बन्धियों से तो कहीं अधिक दु:ख इस शेखरू को होना चाहिये था। जिसके प्यारे भाई को मुझ डाइन ने खा लिया है। किन्तु नहीं वह समझदार है। समझता है कि होनी होकर रहती है—विधाता के लेख को कोई भी मेट नहीं सकता ! धन्य हो शेखरू, तुम धन्य हो।

शेखरू मौन खड़ा, मौन पूनमी को देख रहा था। वह कालेज का विद्यार्थी था। आरम्भ से ही उसके भाई ने कुछ ऐसी शिक्षा उसे दी थी कि वह बजाय लोगों पर विश्वास कर उनके साथ चलने के स्वयं सोच-विचार कर कुछ करे। उसने न जाने कितनी बाल-विधवाओं को कष्ट झेलते देखा था। उनको अभागिन और डाइन के नाम से सम्बोधित किये जाते सुना था। वह सोचता इनमें इनका क्या दोष ? अरे उन मूर्खों से कोई पूछे कि क्या भारत की नारी अपने हाथ से अपने सोहाग को मिटाना पसन्द करती है या उसकी रक्षा करना ? आज उसके समक्ष भी एक वैसी ही समस्या आ गई है। वह संसार को दिखा देगा कि विधवाओं को भी जीने का अधिकार है।

शेखरू ने पूनमी से आगे कहा "भाभी मां ! आप केवल एक बार हाँ कर दीजिए। मैं अपने भाग्य को सराहूँगा आपकी सेवा कर जीवन सफल करूँगा।"

पूनमी ने आँसू पोंछते हुए उत्तर दिया "तुम चलने का प्रबन्ध करो...मैं साथ चलूंगी।"

इतना कहकर वह कमरे से बाहर चली गई। शेखरू के अधरों पर मुस्कान फैल गई।

: २ :

पूनमी सबको छोड़कर शेखरू के संग चली तो आई किन्तु अब उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हो रहा था। उसको आना तो था ही, आज नहीं तो कल अवश्य ! फिर इसमें इतनी शीघ्रता करने की क्या आवश्यकता थी। जिस घर में वह इतनी

बड़ी हुई, जिन माता-पिता की गोद में खेल-खेल कर वह पली, इस प्रकार उन सबको ठुकरा कर चली आने में लाभ के स्थान पर हानि अधिक हुई है।

उसके लिए पिता के घर के द्वार सदा के लिए बन्द हो गये हैं। उसको अपनी अज्ञानता पर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। उसे उस क्षण तनिक भी इस बात का ध्यान न आया कि वह विधवा है और एक विधवा के लिए पिता का सहारा बहुत बड़ा सहारा होता है। इस सहारे को तो उसने उसी दिन ठुकरा दिया था जिस दिन वह शेखरू के साथ ससुराल आ गई थी।

शेखरू बराबर पूनमी को प्रसन्न रखने का प्रयास करता रहता। पढ़ने के पश्चात् जो भी समय उसे मिलता वह पूनमी की सेवा करता। उसे हँसाता, स्वयं हँसता। दोनों का रूठना मनाना चलता और उस क्षण शेखरू सचमुच ही छोटा-सा बालक बन जाता। फिर भी पूनमी के मुख पर स्वाभाविक मुस्कान न देखता। तब वह एकान्त में बैठकर स्वयं पर कुढ़ता और पूनमी को प्रसन्न देखने के लिए नई चाल सोचता। किन्तु कभी भी उसे सफलता न मिलती। पहले उसने यही अनुमान लगाया था कि भाभी माँ को केवल भाँवर पड़ते ही विधवा हो जाने का शोक है। किन्तु अब उसे अपना यह विचार निराधार प्रतीत होने लगा था और तब इस विचार ने भी जन्म लिया कि इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण भी है। वह उसी कारण की खोज में प्रत्येक क्षण व्याकुल रहने लगा।

दिन बीतते जा रहे थे और अपने साथ अतीत को भी समेटते जा रहे थे। शेखरू के साथ इस मकान में अकेले रहते पूनमी को एक वर्ष से अधिक हो गया था। शेखरू ने उसे माँ का स्थान दिया और पूनमी ने उसे माँ का प्यार दिया। पर यह कुटिल

संसार कब इस पर विश्वास करेगा कि दो युवा हृदय एक साथ एकान्त में रहें और उनमें भावनायें न उत्पन्न हों। फूस के निकट चिनगारी हो और उसमें से धुआँ न निकले।

पूनमी इन बातों को अनुभव करती थी किन्तु कुछ कहने का साहस न कर पाती। फिर भी वह सदैव शेखरू को सचेत करने की बात सोचती रहती। अन्त में एक दिन वह अवसर आ भी गया। शेखरू कालेज से प्रसन्नचित्त वापस आया और आते ही पूनमी के चरण छू कर बोला "भाभी माँ, मुझे आशीर्वाद दो। आज तुम्हारे शेखरू ने वह इनाम पाया है जिसकी आशा स्वप्न में भी न थी।"

पूनमी ने मुस्कराते हुए कहा "भइया आशीर्वाद माँगने से नहीं मिला करता। तुम्हारे लिए तो मेरे रोम-रोम में शुभ कामनायें भरी हुई हैं।"

शेखरू ने पास बैठते हुए मुख फुलाकर कहा "बस रहने दो, भाभी माँ! यही बात तो मुझे भाती नहीं। प्रत्येक वस्तु बिना कहे दोगी परन्तु कहने से कुछ न दोगी!...रोज़ भगवान से मेरे लिए प्रार्थना करोगी और प्रातःकाल व सायंकाल बैठकर आशीर्वाद दोगी। किन्तु इस समय माँगने से न दोगी।"

पूनमी खिलखिला कर हँस पड़ी। यह शेखरू कभी-कभी सचमुच बालकों जैसी बातें करने लगता है।

हँसी को रोकती हुई बोली "तो इतनी-सी बात पर रोने लगे—मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है और आज भी मैं तुम्हें यही आशीर्वाद देती हूँ कि भगवान् तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य में सदैव सफल करे।"

बच्चों की भाँति पूनमी की गोद में सिर रखकर शेखरू बोला "तुम कितनी अच्छी हो भाभी माँ।"

उसके केश को सहलाती हुई वह बोली "पर तुमने यह तो बताया ही नहीं कि इनाम क्या पाया ?"

शेखरू ने नेत्र घुमाकर उसकी ओर देखते हुए कहा "अरे हाँ यह तो बताया ही नहीं ! पेरिस में हुए कहानी के मुक़ाबले में मैंने जो एक कहानी भेजी थी उसी पर मुझे एक लाख का प्रथम पुरस्कार मिला है।"

अकस्मात पूनमी के मुख से निकल गया "एक लाख ! . "

शेखरू ने भी उसी प्रकार कहा 'हाँ भाभी माँ ! एक लाख यह देखो तार !"

पूनमी भूल गई कि वह युवा है। उसने आवेश में शेखरू का सिर अपने अंक में भर अपनी छाती से लगा लिया। उसके मुख से निकला "मेरे लाल !" उसने अपना सारा मातृत्व इन्हीं दो शब्दों को सौंप दिया। वह इसी प्रकार कई क्षण बैठी रही।

वह अपने को भूल गई। अपनी स्थिति को भूल गई। उसे नहीं ज्ञात हुआ कि उसके पिता द्वार के बाहर खड़े उसकी इस स्थिति पर दाँत पीस रहे हैं। उनके नेत्रों में रक्त उतर आया है। वह रोष में काँप रहे हैं। वह हाथ का डंडा मज़बूती से पकड़ कर आगे बढ़े। दोनों अपने में इतना खोये हुए थे कि उनकी पद-चाप भी न सुन सके। इनके निकट पहुँचकर और मारने के अभिप्राय से इन्होंने डंडा ऊपर उठाया परन्तु मार न सके। हाथ उठा का उठा ही रह गया। उनके नेत्रों से दो बूँद नेत्रांबु मेज़ पर रखी शेखरू की नोटबुक पर गिर पड़े। लिखे हुए शब्दों की स्याही फैल गई। वह घूम पड़े और घर के बाहर निकल गये।

शेखरू ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा "भाभी माँ यह जो एक लाख का इनाम मिलेगा सो तुम्हारे ही भाग्य से। तुम्हारे भाग्य से ही तो मुझे यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है कि मैं

समाज के मुख पर कालिख लगाकर पूछूँ कि कौन कहता है कि मेरी भाभी माँ मनहूस है ! अभागी है ! आयें और देखें कि उन्हीं के आशीर्वाद से आज शेखरू लखपती बन गया है ।"

पूनमी का मुख गर्व से चमक उठा । उसके नेत्रों में प्रसन्नता के आँसू आ गये । बात काट कर बोली "बस रहने दो अब इतना बढ़-बढ़कर बातें न करो..."

बात काटता हुआ वह बोला "कोई बात नहीं भाभी माँ, आज तो मैं तुम्हारे कहने से आगे कुछ न कहूँगा । पर कान खोलकर सुन लो भाभी माँ कि मेरी यह जबान एक दिन ऐसी खुलेगी कि यह लोग भागने का मार्ग न पायेंगे ।"

पूनमी बोली "तब की तब देखी जायगी, चलो जलपान तो कर लो । इस प्रसन्नता में वह तो भूल ही गये ।"

शेखरू हँसता हुआ बोला "इस आशा पर भूल जाया करता हूँ कि मेरी भाभी माँ मेरी भूल को सुधार तो देंगी ही ।"

इस पर दोनों खिलखिला कर हँस पड़े ।

दोनों चौके में जा बैठे । एक तश्तरी में दो केले और कटोरे में दूध और चावल शेखरू की ओर बढ़ा दिया । शेखरू दूध-चावल चम्मच से खाने लगा । दोनों चुप थे । कुछ क्षण पश्चात् शेखरू मुस्कराता हुआ बोला "भाभी माँ अब मैं पढ़ने के लिए विलायत जाऊँगा । जाने की आज्ञा तो तुम दे ही दोगी । जानती हो वहाँ से वापसी पर तुम्हारा शेखरू कोई बड़ा अफसर बनेगा । और फिर..."

पूनमी बात काटती हुई बोली "और फिर के आगे मैं जानती हूँ । किन्तु वहाँ जाने की आज्ञा तुम्हें केवल एक ही शर्त पर मिलेगी ।"

"वह क्या भाभी माँ ?"

"वह तो बहुत ही मामूली बात है। ब्याह करने के पश्चात् जाने की आज्ञा दूँगी।"

'भाभी माँ तुम्हारी यही बात तो मुझे अच्छी नहीं लगती। पहले भी कितनी बार कह चुका हूँ और आज भी कह रहा हूँ कि इस बारे में मुझसे न कहो।"

"मगर क्यों ?"

"इस बात को शायद समझ न सको।"

"यदि मुझसे कहने वाली न हो तो न कहो···आगे कभी न कहूँगी···" इतना कहकर और जाकर कमरे में पलंग पर बैठ गई।

शेखरू भी पास जाते हुए बोला "तुम नाराज़ हो गईं भाभी माँ। तो लो सुनो, ब्याह करने का मतलब हुआ तुम्हारी सेवा न कर पाना·"

"वह कैसे ?···तब तो मेरी सेवा को दो हो जायेंगे !"

"तुम भूलती हो भाभी माँ···उस समय मेरा ध्यान बँट जायगा। तुम्हारी सेवा ठीक से न कर सकूँगा। अभी वह अपनत्व जो तुम्हारे लिए है उस समय आधा बँट कर किसी अन्य के पास चला जायगा। तब तुम्हीं बताओ भाभी माँ कि तुम्हारी सेवा का वह भार जिसे उठाने का मैंने प्रण लिया है कैसे पूरा कर सकूँगा ?"

"पर कब तक नहीं करोगे। बिना ब्याह किये जाने की आज्ञा मैं न दूँगी।"

"भाभी माँ, क्यों मुझे विवश कर रही हो। मैं सच कहता हूँ कि अन्त में तुम्हीं मुझे दोषी ठहराओगी।"

"उसकी चिन्ता तुम न करो। भाग्य का लिखा मिट नहीं सकता। दुनियां में रहकर दुनियांदार बनना होगा। नहीं तो

दुनियां हमें जीने न देगी। आज मैं तुमसे साफ़-साफ़ कहे देती हूँ कि या तो ब्याह करो या फिर मुझे काशी भेज दो। वहीं भगवान् की याद में सारा जीवन व्यतीत कर दूंगी।"

"पर क्यों? क्या यहाँ कोई कष्ट है?"

"अब मैं तुमको क्योंकर समझाऊँ।"

पूनमी के नेत्रों में आँसू भरा देखकर शेखरू घबरा उठा। उसकी दृष्टि उसके मुख पर अटक गई। उसे ऐसा लगा कि जैसे उसकी वह आँखें कह रही हों, 'अरे पगले तू दुनियांदारी की ओर से बिलकुल अनभिज्ञ है। भला सोच तो सही। हम दो युवा प्राणियों को एक साथ रहते यह दुनियां कैसे देख सकेगी? वह कभी भी इस पर विश्वास न करेगी कि तुम दोनों अभी तक पवित्र हो।'

उससे अब न रहा गया। वह पूनमी के पग छूता हुआ बोला "भाभी माँ, मैं सब समझ गया। मैं ब्याह करूँगा पर एक शर्त पर!"

"वह क्या?"

"वह बिलकुल तुम्हारी ऐसी होनी चाहिए!"

"बस भइया···इससे आगे न कहो! मेरी ऐसी का मतलब मेरा ऐसा भाग्य! तब तो मैं तुम्हें सदा के लिए खो बैठूंगी··· सो मैं नहीं चाहती।"

"सो कैसे हो सकता है भाभी माँ! मैं बच्चा थोड़े हूँ जो खो जाऊँगा···"

"सो मैं जानती हूँ।"

"मेरा मतलब था बहू तुम अपनी ही पसन्द की खोजो।"

"ऐसा ही होगा।"

: ३ :

रामफल जब घर पहुँचे तो सीधे अपने कमरे में चले गये। नौकर सामान भीतर ले गया। उनका मुख रोष से रक्तवरण हो रहा था। नौकर ने उनके उस मुख को देख लिया था और इसीलिए उनके भीतर आ जाने पर वह सामान को उतारने को गया था। उनकी पत्नी दुर्गा को जब उनके आने का समाचार मिला तो उनके स्वागत के लिए शीघ्रता से बाहर आई।

उनके हृदय में अपनी पुत्री पूनमी का कुशल समाचार जानने के लिए खलबली-सी मची हुई थी। पर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वह सीधे अपने कमरे में चले गये हैं तो उन्हें समझने में देर लगी कि लक्षण कुछ अच्छे नहीं हैं। उनके साथ व्यतीत हो चुके इस तीस वर्ष के जीवन में उन्हें ज्ञात हो चुका था कि रोष की अवस्था में बाहर से आने के पश्चात् वह सीधे बिना किसी से बोले अपने कमरे में चले जाते हैं। वह घबड़ा उठी कि न जाने क्या करके आये हैं?

उनके नेत्रों के समक्ष आज से एक वर्ष पूर्व का दृश्य आग या जबकि पूनमी ब्याह का जोड़ा पहने अपने भाग्य पर आँसू बहा रही थी। भाँवर पड़ जाने के पश्चात् जब दुल्हा घोड़े पर वापस जा रहा था तो बाजे के स्वर से किस प्रकार घोड़ा भड़क गया था और सामने के पेड़ से जा टकराया था। तब वहीं सिर फट जाने के कारण दुल्हे की मृत्यु हो गई थी।

फिर वह दृश्य भी सामने आ गया जबकि पूनमी रोती हुई सबके रोकने पर भी अपने देवर शेखरू के साथ ससुराल चली गई थी। जाते समय सारे घर वालों के साथ उन्होंने भी कहा था कि अब इस घर से तेरा कोई सम्बन्ध नहीं—हमारे लिए तू मर गई। नेत्रों से अश्रुधारा बहने के कारण दृश्य अदृश्य हो गये।

उनका मातृत्व उनको धिक्कारने लगा। उनका हृदय शोक में डूब गया।

आँचल से आँसू पोंछकर वह पति के कमरे की ओर चली। द्वार पर रुककर उन्होंने उन पर दृष्टि छोड़ी। वह पलंग पर लेटे हुए खिड़की से बाहर आकाश में उड़ते मेघों को निहार रहे थे। नेत्र अभी तक लाल थे पर रोष से नहीं बल्कि रोने के कारण। दुर्गा डरते-डरते उनके पास पहुँची। फिर भी वह वैसे ही पड़े रहे।

उन्होंने डरते-डरते कहा "शीघ्र लौट आये ?"

उत्तर न पा कुछ क्षण पश्चात् फिर बोली "भेंट क्या नहीं हुई ?"

इस बार उन्होंने अपनी दृष्टि उनकी ओर घुमाई और फिर करवट लेकर लेट गये। अश्रुधारा का वेग बढ़ गया।

दुर्गा से न रहा गया। वह दूसरी ओर उनके सामने जाकर बोली "आप बोलते क्यों नहीं ? भेंट हुई या नहीं ? क्या-क्या बातें हुईं ? कुछ तो बताइये ?"

इतना कहते-कहते जब उनका ध्यान पति के आँसुओं पर गया तो वह घबड़ा उठी।

पास बैठकर बोली "क्या हुआ ! आपकी आँखों में आँसू क्यों ?"

"तुम कब तक पूछती रहोगी और मैं कब तक बताता रहूँगा—हम दोनों थक जायेंगे।"

"आप बात तो बताइये ?"

"पूनमी की माँ यह आँसू तो आँखों में नासूर बनकर आ गये हैं। जीवन भर रसते रहेंगे !"

"आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? पूनमी का कुशल समाचार तो बताइये ? है तो कुशल से ?"

"सुन सकोगी उसका कुशल समाचार ?"

"क्यों न सुन सकूँगी ! यही जानने के लिए तो ग्रापको इतना कष्ट दिया था।"

"नहीं पूनमी की माँ ! तुमने यह जानने के लिए मुझे वहाँ नहीं भेजा था जो जानकर मैं ग्राया हूँ !"

"ग्रब कृपा कर पहेली न बुझाइये साफ़-साफ़ बात बताइये ?"

"तुम्हारी पूनमी, जिसके ग्राचरण के गुन तुम गाया करती थीं कि मेरी पूनमी सती सीता ग्रौर सती सावित्री से कम नहीं होगी। वह निर्लज्ज ग्रपने देवर शेखरू के साथ गुलछर्रे उड़ा रही है।"

"भगवान् यह मैं क्या सुन रही हूँ ! किसी ने ऐसे ही ग्राप से कह दिया होगा। मेरी पूनमी तो ऐसी नहीं है।"

"हाँ जी, तुम्हारी पूनमी तो देवी है···जानती हो कान धोखा खा सकते हैं किन्तु ग्राँखें नहीं ! जिसने उस पापिन को रंगे हाथों देखा है।"

"किन्तु मुझे विश्वास नहीं ग्राता।"

"हाँ जी ! तुम क्यों विश्वास करने लगीं। तुम उसकी माँ हो न ! ग्रौर मैं उसका शत्रु हूँ जो झूठ बोलूंगा। इन्हीं नेत्रों ने देखा है कि वह कुलटा ग्रपने देवर शेखरू के सिर को ग्रपनी छाती से लगाये प्यार कर रही है। जी में तो ग्राया था कि डंडे से दोनों का सिर तोड़ दूँ किन्तु न जाने क्यों उठा हुग्रा हाथ वापस ग्रा गया।"

"कलमुंही ने खानदान की नाक कटा दी। ग्रभागिन जन्म लेते ही मर क्यों न गई।"

"उसके लक्षण तो पहले ही से खराब थे वह तो कहो, पर नहीं निकले थे, नहीं तो कबकी फुर से उड़ गई होती। देखा

नहीं ब्याह के दूसरे ही दिन किस प्रकार गर्व से सिर उठाये अपने देवर के साथ ससुराल चली गई। जैसे हम लोग कुछ थे ही नहीं···कोई बात नहीं वह तो अपनी चाल चल गई। किन्तु अब मैं भी अवसर की खोज में रहूँगा। मिलते ही ऐसा लथेड़ूँगा कि जीवन भर हमारी ही भाँति रोती रहेगी।"

दोनों जने इन्हीं बातों में खोये हुए थे। अतः किसी को भी ज्ञात न हो सका कि उनका पुत्र विवादी कब से खड़ा उनकी यह बातें सुन रहा है। अन्तिम वाक्य के पूरा होते ही वह भीतर आकर बोला "पिता जी ! मेरे जीवित रहते आप दीदी को कोई हानि नहीं पहुँचा सकते।"

रामफल सकपका गये किन्तु शीघ्र ही गुर्राते हुए बोले "खबरदार विवादी जो तू इस मेरे मार्ग में आया···छोटा मुंह बड़ी बात अच्छी नहीं लगती।"

"आपकी आज्ञा सिर आँखों पर ! पर इसमें मैं आपका विरोध करूँगा। मैं अब बचचा नहीं हूँ। अच्छा बुरा समझने लगा हूँ। आपने केवल आँखों से देखा है परन्तु मैं दीदी के हृदय को पहचानता हूँ। वह इतनी गिरी नहीं हैं और न शेखरू बाबू ही। आप स्वयं ही उनको कष्ट देना चाहते हैं।"

"विवादी !"

"पिता जी ! कहाँ गई थी आपकी मनुष्यता जब जीजा जी की मृत्यु हुई थी। दीदी को सान्त्वना देने के स्थान पर आपने उनके टूटे हृदय पर और भी ठेस लगाई थी। क्या उस समय आप लोगों का यही कर्त्तव्य था "

"दुष्ट दूर हो जा मेरी नज़रों से। मैं तेरा मुँह भी देखना नहीं चाहता।"

दुर्गा उसका हाथ पकड़कर बाहर ले जाती हुई बोली "यही

है तेरी सभ्यता···कि तू बड़ों का अनादर करे···चल अपने कमरे में···"

विवादी कुछ और भी कहना चाहता था किन्तु माँ के इस प्रकार डाँटने और बाहर ले लाने के कारण चुपचाप पिता को घूरता हुआ चला गया। उसके हृदय में पिता के विरुद्ध चिनगारी तो उसी दिन चमक उठी थी जबकि इन लोगों ने पति की मृत्यु हो जाने पर जो घृणात्मक व्यवहार पूनमी के साथ किया था। वही चिनगारी अब धीरे-धीरे अँगारा बन गई थी। अभी तक उसे कोई अवसर न मिला था कि उस अँगारे को उगल दे और आज ,जब अवसर आया तो उसने कह ही डाला। वह अपनी पूनमी दीदी को प्यार करने से अधिक उसका आदर करता था। पूनमी के चले जाने के पश्चात् वह कई दिनों तक रोता रहा। उसने तब भोजन भी नहीं किया था। अन्त में विवश हो उसे पढ़ाई में मन लगाना पड़ा।

रामफल आज विवादी की बातें सुनकर तथा उसके बातें करने के ढंग को देखकर इस परिणाम पर पहुँच गये कि लड़का हाथ से गया। वह उसको डाँट सकते थे, मार सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा न किया। इतना होते हुए भी उनके हृदय में यह विचार बराबर चक्कर काट रहा था कि यह विवादी नहीं बल्कि इसके पीछे कोई और ही बोल रहा है।

हो न हो यह चाल पूनमी और शेखरू की ही है। उन्होंने ही इसे उकसाया है। नहीं तो इसका क्या साहस था कि मेरे सामने मुख खोले। मेरी नाक कटवाने के पश्चात् अब मेरे घर को उजाड़ने पर लगे हुए हैं। वह समझते होंगे कि उनकी चाल छिपी रह जायगी। पर यह नहीं मालूम कि रामफल कच्ची गोलियाँ नहीं खेले हैं। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि अब विवादी पर कड़ी दृष्टि रखनी होगी।

: ४ :

प्रातःकाल का समय था। भगवान् भास्कर अपने लाल रथ पर सवार अपनी लाल सेना के साथ आगे बढ़ते आ रहे थे। सड़कों पर सवारियों का शोर बढ़ता ही जा रहा था, रामफल स्नान से वापस आकर पूजा पर बैठ चुके थे।

विवादी अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा था, पर उसका मन पढ़ने में न लगता था। रात्रि में उसने पूनमी के नाम एक पत्र लिखा था। उसे अभी तक बन्द न किया था अतः उसी को एक बार पुनः निकाल कर पढ़ा।

वह कुछ सोच में पड़ गया। वह इस बात का निश्चय नहीं कर पा रहा था कि पत्र भेजा जाय या नहीं। अन्त में उसने भेजना ही ठीक समझा। असली बात ज्ञात हो जायेगी। फिर देखूँगा कि दोषी कौन है? पत्र को एक बार और पढ़कर लिफाफे में रख दिया। बन्द करने के पूर्व इस बात ने फिर उसे चौंका दिया कि कहीं बात सच हुई और उसको छिपाने का प्रयास किया गया तो? वह कुछ क्षण सोचता रहा। अन्त में झुँझला कर उसने लिफाफा बन्द कर दिया और पता लिखकर नौकर को दे दिया। नौकर पत्र लेकर चला गया।

रामफल पूजा से उठकर अपने कमरे में गये और जलपान की मेज़ पर बैठ गये। किन्तु विवादी अभी तक न आया था। उन्होंने बुलाने के लिये नौकर को भेजा और आज का समाचार-पत्र स्वयं पढ़ने लगे।

प्रथम पन्ने पर मोटे शब्दों में लिखा था 'श्री शेखरू बी० ए० को कहानी की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार।' वह इस समाचार को पढ़कर आश्चर्य चकित हो उठे। नीचे शेखरू की फोटो

भी छपी थी। यह क्या हो गया ! कल का छोकरा शेखरू आज लखपती हो गया। अब वह कैसे उसको नीचा दिखायेंगे ?

यह सब तो ठीक था किन्तु इस विचार ने पुनः उनके शरीर में आग लगा दी कि इसी ने उनकी नाक कटवाई है—उनका मस्तक नीचा किया है ! और वह भी जो आज तक किसी के समक्ष नहीं झुका। उन्होंने निश्चय किया कि कुछ भी हो वह इसका बदला अवश्य लेंगे।

और आगे पढ़ने में स्वयं को असमर्थ देखा उन्होंने समाचार-पत्र एक ओर रख दिया। सामने की कुरसी को खाली देख उन्हें रोष आ गया। यह क्या विवादी अभी तक नहीं आया !

नौकर से बोले "अब जलपान के लिए आज क्या मैं ही वच रहा हूँ ?

"सरकार अभी किसी ने नहीं किया।"

"तो विवादी कहाँ है ?"

"सरकार, अपने कमरे में।"

"तुम्हें बुलाने के लिए भेजा था।"

"छोटे सरकार ने कहा कि आप नाश्ता कर लें।"

"क्यों ?"

"सो तो नहीं बताया।"

वह रोष से काँपते हुए उठ खड़े हुए और विवादी के कमरे की ओर चले। नौकर ने तुरन्त जाकर इस घटना का उल्लेख मालकिन से किया। उसकी बातें सुनकर वह भी काँप उठीं। उनके नेत्रों के समक्ष कल की पिता-पुत्र वार्ता का दृश्य आ गया। वह भी उठकर उसी ओर चल दीं।

वह जिस समय विवादी के कमरे में पहुँचे तो वह वहाँ नहीं था। उन्होंने कमरे में चारों ओर एक बार दृष्टि छोड़ी और

जब उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि वह वहाँ नहीं है तो वह उसी की प्रतीक्षा में वहीं बैठ गये। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि आज इस छोकरे का मस्तिष्क ठीक करना ही होगा। उन्होंने अपना डंडा मेज़ के सहारे खड़ा कर दिया। उनके मन में उथल-पुथल मची हुई थी।

दुर्गा भी आकर वहाँ उनके पीछे जम गई। उनका हृदय काँप रहा था। न जाने उनकी यह मूर्ति आज क्या करेगी! उनके मुख पर क्रोध को देखकर ही उन्होंने उनके हृदय में उठती हुई विकराल तरंगों की ऊँचाई तथा उनका अभिप्राय जान लिया था। उनकी आँखों में आँसू भर आये।

उन्होंने भय से पूछा "आपने क्या अभी नाश्ता नहीं किया ?"

उन्होंने घूमकर देखा और फिर बिना बोले ही उसी प्रकार बैठ गये।

दुर्गा ने पुन पूछा "नाश्ता यहीं पर ले आऊँ ?"

"और नाश्ता के साथ-साथ थोड़ी हल्दी और तेल भी !"

"आपका जी अच्छा नहीं है क्या ?"

"तुम इस समय यहाँ से जाओ।"

"और यदि मैं न जाऊँ तो ?"

"तो मुझे कुछ और करना होगा।"

"आप जो अनर्थ करने जा रहे हैं उसका परिणाम भी क्या आपने सोचा है ?"

"वह सोचना तुम्हारा काम नहीं।"

"तो मेरे जीते जी आप विवादी पर हाथ नहीं उठा सकते। आपकी हट ने ही मेरी पूनमी को मुझसे दूर फेंका और अब आप विवादी को भी मुझ से अलग करना चाहते हैं !"

"यदि वह राह पर न आया तो मुझे यही करना होगा। मैं

कभी भी सहन नहीं कर सकता कि कोई मेरे विरुद्ध चले। तुम्हारी क्या मजाल जो मेरे सामने बातें कर सको।"

इतना कहकर उन्होंने उनका हाथ पकड़ कमरे के बाहर कर दिया और स्वयं आकर फिर उसी कुरसी पर बैठ गये।

दुर्गा सिसकती हुई चली गई। ऐसा अपमान उठाने का अवसर उनके जीवन में यह पहला ही था। इसके पूर्व कभी इस पचास वर्ष के जीवन में उनको किसी ने भी कुछ न कहा था। वह सहन न कर सकीं और बिलखती हुई अपने पलंग पर गिर पड़ीं। उनकी आँखों के समक्ष अन्धेरा छा गया। जिस पति की सेवा उन्होंने जी-जान से की क्या उनका यही कर्त्तव्य था कि इस भरे घर में उन्हें अपमानित करें ? क्या उनकी पत्नी होने के नाते मेरा इतना भी अधिकार नहीं है कि मैं कुछ बोल सकूँ। वह इसी प्रकार की विचारधारा में बहती हुई अपने भाग्य पर आँसू बहाने लगीं।

उधर उनके चले आने के कुछ क्षण पश्चात् विवादी ने तौलिया से मुख पोंछते हुए कमरे में प्रवेश किया। आते ही उसकी दृष्टि पिता पर पड़ी। वह उनके लाल नेत्र देखकर घबड़ाया नहीं क्योंकि उसे इस अवसर की आशा थी। अतः वह पहले ही से तैयार था।

उसे देख रामफल क्रोध को रोकते हुए बोले "नाश्ता करने में देर क्यों की ?"

"आज जी नहीं चाहता।"

"क्यों ?"

"बस यों ही।"

"विवादी तुम्हारी यह बातें सहन नहीं कर सकता।"

"उसकी आवश्यकता भी नहीं।"

'मैं तुमको एक अवसर और भी देता हूँ। यदि तुम स्वयं को ठीक न कर सके तो मुझसे बुरा कोई न होगा।"

"यह अवसर आप किस लिए दे रहे हैं ?"

"तुम नहीं समझे ?"

"नहीं पिता जी !"

"फिर कभी बताऊँगा ! आओ मेरे साथ। मैंने अभी नाश्ता नहीं किया ."

इतना कहकर वह कुरसी से उठ खड़े हुए। उनके हृदय में भभकती ज्वाला अब कुछ शांत हो चली थी। उन्होंने सोचा कि अब लड़का मार्ग पर आ गया है। उनका सिर घमंड से ऊँचा हो गया।

विवादी ने कहा "नहीं पिता जी आप नाश्ता कीजिये। मैं नहीं करूँगा।"

"तो तुम मेरी इच्छानुसार काम नहीं करोगे ?"

"जब तक आपके विचार को अपना न सकूँगा।"

"तो तुम्हें यह घर भी छोड़ना होगा।"

"सो भी हो जायगा पिता जी! यदि ऐसा व्यवहार रहा तो!"

"तो मैं भी तुम्हें आराम से न रहने दूँगा।"

इतना कहकर उन्होंने अपना डंडा इस जोर से मारा कि उसका वार विवादी की कलाई पर ताक़त से पड़ा। हड्डी टूट गई और कलाई लटक गई। विवादी ने "चीं" तक न की। यह देख उनका पारा और भी चढ़ गया और उसी झोंक में कई डंडे उन्होंने और भी जमा दिये। एक वार से तो विवादी की खोपड़ी भी फूट गई और रक्त निकल पड़ा। विवादी वहीं पर अचेत हो गिर पड़ा।

: ५ :

दोपहर का समय था। सूर्य बिलकुल सिर पर चमक रहा था। ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी निद्रा देवी के आगमन के लिए बिलकुल उपयुक्त है। अतः उस समय लगभग प्रत्येक दिशा में उन्हीं का साम्राज्य होता है और यहाँ भी यही था।

कड़ाके की धूप पड़ रही थी। ऊपर आकाश तथा नीचे धरती सब अग्नि की भाँति तप रहे थे। पेड़ों की पत्तियाँ तनिक भी नहीं हिलती थीं क्या द्विपद और क्या चतुष्पद सब जल की खोज में थे जहाँ कम-से-कम वह अपने शरीर को ठंडा तो रख सकें।

पूनमी अपने नये बँगले के एक कमरे में सोफ़े पर बैठी अपने भविष्य के बारे में सोच रही थी। शेखरू ने यह बँगला अभी कुछ दिन पूर्व ही मोल लिया था।

कमरे में लगा हुआ पंखा अपनी पूरी चाल से घनघना रहा था। पूनमी की दृष्टि उसी पर जमी हुई थी किन्तु विचार कहीं और ही विचर रहे थे। एक बार उसने अपने समक्ष जीवन का सिंहावलोकन कर डाला। अपने जीवन से वह बिलकुल सन्तुष्ट थी। क्योंकि शेखरू ने उसके लिए वह सारी वस्तुएँ जुटा रखी थीं तथा वह सारा सम्मान दे रखा था जो पति के जीवित रहते उसको मिलता। वह प्रत्येक क्षण उसके आराम का ध्यान रखता था। अवसर आने पर अपनी भाभी माँ के लिए जान भी देने को तैयार था और पूनमी—अब सचमुच ही उसे प्यार करने लगी थी। परन्तु प्यार भी कैसा! जो भाभी के साथ लगे हुए शब्द 'माँ' का अनादर न करे।

किन्तु वह दुनिया वालों को क्योंकर यह विश्वास दिलाये कि उनका वह आरोप जो वह इन दोनों के लिए लगा रहे हैं मिथ्या है। वह अपनी इच्छाओं को मार सकती है; अभिलाषाओं का दमन कर सकती है, हृदय में उठती हुई उमंगों को दबा सकती है तथा अपनी आत्मा को दुःखी कर सकती है किन्तु समाज का मुख क्यों कर बन्द कर सकेगी।

सहसा उसकी दृष्टि पंखे से हटकर बाहर उद्यान में लगे फौहारे पर जा टिकी। वहीं दो कपोल जल में नहा रहे थे। कभी डुबकी लगाते और कभी बाहर बैठकर पर फड़फड़ाते। दोनों कभी-कभी एक-दूसरे की चोंच पकड़ लेते। कभी पर को नोचते कभी फड़फड़ा कर उड़ते। तथा फिर बैठकर लड़ते।

पूनमी इस दृश्य को देखकर तड़प उठी। उसके हृदय में एक टीस-सी उठी। शरीर में एक प्रकार की सिहरन-सी प्रतीत हुई। उसने अपने दोनों हाथों से हृदय को दबा लिया। फिर भी चैन न मिला तो तकिया को उठाकर दबा लिया। अपनी इस दशा पर उसे रोना आ गया और नेत्रों से नेत्रांबु बह निकले। विधाता ने क्या उसकी फूल-सी जवानी, कोमल शरीर तथा उमंग भरे हृदय को यों ही घुट जाने के लिए बनाया है ? क्या पाप किया था उसने जो उसे यह दंड मिल रहा है ? क्या उसका जीवन यों ही रोने के लिए बना है ?

उसके नेत्रों के समक्ष कुछ दिन पूर्व का दृश्य घूम गया। उसकी आयु केवल सोलह वर्ष की थी। अंग-अंग से यौवन फूट रहा था। उन्हीं दिनों उसके भाई विवादी का एक मित्र सताशू उसके यहाँ आया करता था। वैसे वह आयु में विवादी से काफी बड़ा था। पढ़ने में उसका मन न लगता था किन्तु गाने और खेलने में बड़ा ही निपुण था। कई वर्ष फेल होने के कारण अब

वह विवादी का सहपाठी हो गया था विवादी मित्रता के अति-रिक्त भी उसका आदर करता था।

सताशू देखने में सुन्दर था। पढ़ने में उसका मन न लगता फिर भी उसमें कोई ऐसी बात न थी जिसे आचरण से गिरी हुई कहा जाय। गायन विद्या में भगवान् उसके सहायक थे। उसका कंठ बड़ा ही मधुर था। इसी पर उसके माता-पिता को यह आशा थी कि वह एक दिन अवश्य ही देश का बेजोड़ गायक निकलेगा।

हाँ तो उसी सुन्दर युवक को जब पूनमी ने पहले-पहल देखा तो उसे ऐसा लगा कि न जाने इस युवक में वह कौन-सी आक-र्षण शक्ति है जो उसे अपनी ओर खींच रही है। वह चाह कर भी बिना उसे देखे चैन न पाती। दिन-प्रति-दिन उसका मन उसकी ओर खिचा जा रहा था।

उस दिन वह किसी कार्यवश विवादी के कमरे में गई थी। सताशू खिड़की के पास खड़ा कुछ गुनगुना रहा था। पूनमी की पद-चाप सुनकर चौंक पड़ा। पूनमी ठिठक गई। दोनों के नेत्र मिले और पूनमी अपने को भूल गई। किसी अपरिचित के सम्मुख जाने का यह उसका प्रथम ही अवसर था। सताशू भी स्वयं को भूल गया था। ऐसी अनुपम सुन्दरी इससे पूर्व उसने कभी भी न देखी थी। उसी क्षण उसने अपना सब कुछ पूनमी के चरणों में लुटा दिया। उसी समय विवादी भी वहाँ आ गया और दोनों को इस प्रकार एक-दूसरे को देखते देख हँस पड़ा।

और बोला "तुम दोनों तो एक-दूसरे को ऐसे देख रहे हो जैसे कभी देखा ही नहीं !"

सताशू विस्मय से बोला "सो तो है ही विवादी भइया !"

"तो लो, मैं तुम दोनों का परिचय कराये देता हूँ। यह हैं मेरी बड़ी वहन और यह हैं मेरे मित्र सताशू।"

इस पर दोनों ने एक दूसरे को नमस्ते किया।

दिन बीतने लगे और उन दोनों का वह साधारण-सा परिचय अब प्यार के पथ पर बढ़ चला था। अब बिना एक-दूसरे को देखे चैन न आता। यह बातें विवादी के अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं जानता था—और न उसने किसी को बताया ही था। उसकी तो स्वयं की यह इच्छा थी कि अपने मित्र को और भी अपने निकट कर ले। पर वह ऐसा न कर सका। पिता के समक्ष उसकी एक न चली और एक दिन पूनमी का ब्याह दूसरे के साथ हो गया।

यहाँ तक सोचते-सोचते पूनमी के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। वह अपने को रोक न सकी। वही सताशू जो आज से एक वर्ष पूर्व केवल उसका था। विधाता ने उसी को उससे सदा के लिए छीन लिया था। न जाने उसे यह सब किन पाप कर्मों के उपलक्ष में भोगना पड़ रहा है? आज भी उसके हृदय में सताशू की मूर्ति उसी प्रकार विराजमान है।

उसके हृदय में विराजमान सताशू की वह मूर्ति मानो चिल्ला-चिल्लाकर उससे कहने लगी "यदि तुझे यही करना था तो मुझे प्यार में बाँधकर सदा के लिए अपना बन्दी क्यों बनाया? छोड़ दे मुझे! भूल जा! निकाल दे अपने हृदय मन्दिर से। तू तो अभागी थी ही पर अब अपने साथ मुझे भी ले डूबी। बता मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था। यही न कि तेरे प्यार के बदले प्यार दिया। तुझे अपनाने के लिए अपना सुख, चैन सब तेरे चरणों में लुटा दिया। तुझे मन-मन्दिर की देवी बनाने के लिए अपने को तेरी सेवा में अर्पित किया। परन्तु नहीं अब ज्ञात

हुआ कि वह मेरा भ्रम-मात्र था। मेरी भूल थी जो तुझे अपनाने का स्वप्न देखा। नहीं जानता था कि तेरे पास पत्थर का हृदय है। नहीं तो अपनी भावनाओं को उससे टकरा कर चकना चूर करने की भूल न करता। अच्छा यही है कि पिछली बातों को हम एक स्वप्न समझ कर भूल जायें।"

पूनमी नेत्र बन्द कर रोने लगी। रोते ही रोते बड़बड़ा उठी "पर मैं इसे स्वप्न कैसे समझूं मेरे देवता? मैंने यथार्थ में तुम्हें प्यार किया था! क्यों इस चोट खाये हृदय पर और चोट लगाते हो? जानती हूँ कि अब इस अभागिन को केवल तुम्हारी याद का सहारा रह गया है। अब उसे भी न छीनो मेरे देवता..."

पूनमी इसी अवस्था में बहुत देर तक पड़ी रही। नौकरानी ने आकर उसके हाथ पर एक पत्र रख दिया। वह उठ बैठी और यह जानकर कि पत्र अभी-अभी आया है उसे खोल डाला। लेखनी कुछ परिचित-सी जान पड़ी। शीघ्रता से नीचे नाम देखा। विवादी का नाम पढ़कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने पत्र को बड़े चाव से पढ़ना आरम्भ किया।

पूज्य दीदी,

नमस्ते, यहाँ पर सब कुशल है और आगे तुम्हारी कुशलता जानने का इच्छुक हूँ। पिछले सप्ताह पिता जी तुम्हें लेने गये थे किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर बिना तुमको देखे ही वापस आ गये। तुमको उन्होंने बहुत भला-बुरा कहा जो मुझसे सहन नहीं हुआ। उनसे कुछ वाद-विवाद हो गया है। क्योंकि तुम्हारे विरुद्ध मैं उनके शब्द न सुन सका। अतः यदि वह बात सच है तो उनसे क्षमा मागूँगा और यदि झूठ है तो उन्हें समझाऊँगा।

वह कुछ यों बताते हैं कि जिस समय वह वहाँ पहुँचे तो तुम शेखरू बाबू का सिर अंक में भरे उन्हें प्यार कर रही थीं। इसी पर क्रुद्ध होकर वह वहाँ से चले आये और अब तुमको कलंकनी इत्यादि नामों से सम्बोधित करने लगे हैं।

मुझे विश्वास है कि तुम मुझे अपना समझकर कोई बात छिपाने का प्रयास न करोगी और शीघ्र उत्तर देने की कृपा करोगी।

तुम्हारा छोटा भाई
विवादी

पत्र को पढ़कर उसे ऐसा लगा कि जैसे कोई उसे अग्नि में जला रहा हो। उसके नेत्रों के समक्ष उस दिन का दृश्य आ गया जब उसने शेखरू का सिर मातृत्व से चिमटा लिया था। उसने तो कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि उसके इस कार्य को यह संसार वाले इस दृष्टि से देखेंगे।

किसी को प्यार करना तो पाप नहीं! बिना प्यार कोई किसी को पा भी नहीं सकता। स्वयं भगवान् भी प्यार बिना नहीं मिलते! प्यार एक है किन्तु उसकी भावनायें अलग-अलग होती हैं। यह समाज वाले उन भावनाओं को समझने का प्रयास क्यों नहीं करते। इनकी दृष्टि में क्या माँ बेटे को प्यार नहीं करती? क्या बहन भाई को प्यार नहीं करती? फिर भी इनकी दृष्टि इस ओर क्यों नहीं जाती? वह केवल उसी अवसर की खोज में क्यों रहते हैं जिसमें किसी का अपमान कर सकें? यदि मैं शेखरू की माँ होती, बहन होती तो भी क्या पिता जी मुझे अपमानित कर सकते थे? किन्तु नहीं मैं भी विधवा हूँ और वह भी युवा। उनकी दृष्टि में हम दोनों एक-दूसरे को प्यार नहीं

थी किन्तु वह औषधि को लगवाने में आनाकानी करता था। उसका हृदय इतना भर गया था कि अब वह अच्छा होना ही नहीं चाहता था।

उसकी इस अवस्था पर उसके पिता को कम शोक नहीं था। अपने कार्य पर वह एकान्त में पछताया करते थे। उनके नेत्रों से गंगा-यमुना बहने लगती थी। फिर भी वह अपनी निर्बलता किसी पर प्रकट नहीं करते थे। जब दशा शोचनीय हो गई तो अन्त में दुर्गा ने पति से कहा "आपको बिन्वादी का भी कुछ ध्यान है ?"

"हाँ है क्यों नहीं !"

"तो इसी प्रकार आप उसका ध्यान रख रहे हैं !"

"तो कैसे रखूँ ?"

"तो यह भी बताना होगा। इस तरह तो बिन्वादी हाथ से जाता रहेगा।"

"सो तो अपने वश की बात नहीं।"

"आपने कैसा पत्थर का हृदय पाया है ? लड़की को सदा के लिए यों ठुकरा दिया और अब लड़के को भी सदा के लिए दूर कर रहे हैं !" क्या आपके हृदय में तनिक भी ममता नहीं ? क्या अन्य डॉक्टर मर गये जो दूसरी औषधि नहीं हो सकती ?"

"मैं तुम्हारा उपदेश नहीं सुनना चाहता। जैसी करनी वैसी भरनी। नालायक ने पिता को अपमानित किया था ! भोगने दो !"

दुर्गा रोती हुई चली गई। रामफल ने कहने को तो कह दिया किन्तु उनके वे कठोर शब्द उन्हीं को तीर के समान बेधने लगे। उनका हृदय काँप उठा। उनके नेत्र डबडबा आये और लाख प्रयत्न करने पर भी वह अश्रुकणों को रोक न सके। उनकी

आत्मा स्वयं उन्हीं को धिक्कारने लगी। विवादी को इस दशा में पहुँचाने वाले क्या वह स्वयं नहीं हैं ? पिता अपने बच्चों की भलाई चाहता है। उनको सदा हँसता-खेलता देखना चाहता है। तो क्या यह वही सुख है जो वह अपने पुत्र को दे रहे हैं ?

उन्होंने आँसू पोंछ डाला। पग बढ़ाते हुए विवादी के कमरे की ओर चल पड़े। कमरे में प्रवेश कर वह चुपचाप एक कुरसी पर बैठ गये। विवादी एक पत्र पढ़ने में तल्लीन था जो अभी-अभी डाकिया दे गया था। पत्र समाप्त कर उसने पिता की ओर देखा और फिर पत्र उनकी ओर बढ़ा दिया।

पत्र पढ़ते-पढ़ते उनका मुख क्रोध से लाल हो गया। वह जो कुछ कहने आये थे उसको न कहकर कुछ और ही कहने के लिए शब्द खोजने लगे।

कुछ क्षण के पश्चात् बोले "तो यह पूनमी का पत्र है। तुमने मेरे वहाँ जाने के समाचार को वहाँ तक पहुँचा ही दिया।"

"यही आवश्यक जान पड़ा। किसी अबला पर इस प्रकार का दोष लगाना··· ···"

"कुलटा ! मेरी भावनाओं को निर्मूल कहकर सती बनना चाहती है !"

"पिता जी, क्या अब भी आपको विश्वास नहीं आया ? क्या आप अब भी दीदी को तुच्छ समझते हैं। और घृणा की दृष्टि से देखेंगे ?"

"तो क्या देवी समझकर पूजूँ उस चांडालिन को ! कितना अच्छा था कि यदि वह नागिन जन्म लेते ही मर गई होती ? तब इतना दुःख तो न होता।"

"पिता जी, अब इस पर दुःख प्रकट करने से क्या लाभ ? अब तो बिगड़ी बात का बना लेना ही सबसे बड़ी बात है।"

"कल का छोकरा मुझे सिखाता है ! कान खोलकर सुन ले विवादी ! आज अन्तिम बार तुझसे कह रहा हूँ कि यदि इस घर में रहना है तो मेरा कहना मानना होगा अन्यथा इस घर को छोड़ना होगा। और यह भी जान ले कि तब इस जायदाद से तुझको इस दशा में एक पैसा भी न मिलेगा।"

"पिता जी, मुझे चाहिये भी नहीं। वह तो आपकी है जिसे चाहें दें किन्तु आप भी कान खोलकर सुन लीजिए 'विचार' मेरे हैं जो चाहूँ करूँ। उस पर आपका कोई अधिकार नहीं। आपकी इच्छानुसार चलना मेरे लिए कठिन है।"

"तो इस घर को छोड़ जहाँ भी सींग समाये चला जा। आज, अभी तथा इसी क्षण ! फिर भूल कर इस घर में पग न रखना।"

इतना कहकर वह चले गये।

"ऐसा ही होगा पिता जी।"

विवादी चारपाई से उतर पड़ा। कपड़े पहन माँ के अन्तिम दर्शन के लिए चल पड़ा। इस समय उसका मस्तिष्क उसके वश में न था। दालान से निकल वह आँगन में आया और फिर सीढ़ियों द्वारा ऊपर चढ़ गया ऊपर पहुँचते ही दाहिने हाथ वाले कमरे के समक्ष जा खड़ा हुआ। यही कमरा दुर्गा का था। वह भीतर पलंग पर पड़ी रो रही थी। विवादी देख कर घबड़ा उठा और उनके पास जा पहुँचा। कुछ क्षण तक वह वैसे ही खड़ा रहा और फिर चुपचाप उन्हें प्रणाम कर वापस आ गया। लाख रोकने पर भी नेत्रों में अश्रुकण न रुके। सिर झुकाए हुए वह द्वार से बाहर सड़क पर आ गया और फिर एक ओर चल पड़ा।

कुछ दूर आ जाने पर जब उसका मन कुछ शांत हुआ तो वह खड़ा होकर यह विचार करने लगा कि वह जायगा कहाँ ?

सड़क पर सवारियों का ताँता बँधा हुआ था। किन्तु इसका विचार अपने भविष्य का मार्ग खोजने में लगा हुआ था। उसने मित्रों के यहाँ जाने की बात सोची। पर नहीं ! जब वह लोग पहले की भाँति प्रसन्नता न देख कारण जानना चाहेंगे तो वह क्या बतायेगा ? अपने सम्बन्धियों के यहाँ ? पर कितने दिन ? नहीं वह किसी के यहाँ नहीं जायगा। वह जीविका का साधन स्वयं जुटायेगा। क्यों वह किसी का आभारी बने ?

इस विचार ने उसके हृदय में एक नया उत्साह भर दिया। उसका मलीन मुख इस दुःख में भी एक बार फिर खिल उठा। उसके पग फिर से आगे की ओर बढ़ चले। वह आगे चौराहे पर जाकर दाहिने मोड़ में विलीन हो गया।

: ७ :

कालेज में विवादी के न आने से सुनीती का मन कहीं भी नहीं लग रहा था। प्रत्येक दिशा में उसे उदासीनता ही दिखाई पड़ती। कालेज के विद्यार्थी उसके मलीन मुख को देखकर आपस में काना-फूसी करने लगते। पर उसके समक्ष कुछ कहने का साहस किसी में नहीं था। इसका मुख्य कारण कालेज में उसका सम्मान था। वह वहाँ की एक कुशल छात्रा थी। उससे सारे शिक्षक स्नेह करते थे।

परीक्षा निकट होने के कारण सारे विद्यार्थी पढ़ने में लगे हुए थे। किसी को भी इधर-उधर ध्यान देने का अवकाश न था। किन्तु सुनीती हर समय एकान्त में बैठी विवादी के लिए आँसू बहाया करती। उसका मन पढ़ने में नहीं लग रहा था। कालेज से अनुपस्थित हुए विवादी को आज एक मास से अधिक हो

कर सकते। ईश्वर तुम तो अन्तर्यामी हो ! यदि शेखरू को प्यार करते समय मेरे हृदय में नीच भावनायें उत्पन्न हुई हों तो मुझे अवश्य दंड देना या यदि भविष्य में उत्पन्न होने की सम्भावना हो तो उस अवसर के आने के पूर्व ही मेरी रक्षा करना। इसके आगे वह और न सोच सकी।

प्रिय विवादी भइया !

प्रसन्न रहो, तुम्हारा पत्र पढ़कर शोक कम किन्तु प्रसन्नता अधिक हुई कि मेरा भइया अभी तक मुझे भूला नहीं है।

पिता जी का कथन सत्य है किन्तु भावनायें निर्मूल हैं। मैं शेखरू को प्यार अवश्य करती हूँ किन्तु उसी प्रकार जैसे एक माँ अपने बेटे को !

क्या मैं आशा करूँ कि कभी आकर दर्शन दे जाओगे। पिता जी व माता जी को प्रणाम।

तुम्हारी शुभचिन्तक
पूनमी।

पत्र समाप्त कर पूनमी उसे लिफाफे में रखकर विवादी का पता लिखने लगी। इसी बीच कालेज से शेखरू आ गया और किताबें रखता हुआ बोला "भाभी माँ, कल कालेज में सारे नगर वालों के समक्ष मुझे सम्मानित करते हुए पुरस्कार दिया जायगा। तुमको भी मेरे साथ चलना होगा भाभी माँ।"

पूनमी कुछ न बोली।

शेखरू को आश्चर्य हुआ। वह निकट जाकर बोला "क्या बात है भाभी माँ, बोलती क्यों नहीं ?"

"सोच रही हूँ कि तुम्हारे साथ चल सकूँगी या नहीं।"

"क्यों, क्या पैदल जाना है जो थक जाओगी।"

"सो बात नहीं भइया ? मुझ विधवा को तुम्हारे साथ जाते देख यह समाज वाले प्रसन्न न होंगे ।"

"भाभी माँ, तुम्हारी बातें कभी-कभी मेरी समझ में नहीं आतीं ! क्या बात है साफ़-साफ़ बताओ ?"

"तो यह पत्र पढ़ लो ।"

शेखरू ने पत्र पढ़ा । उसका मुख क्रोध से लाल हो उठा । वह काँपते हुए बोला "मुझे नहीं ज्ञात था कि पिता भी इतना निर्दयी होता है ।"

"न भइया उन्हें कुछ न कहो । उन्होंने वही कहा है जो प्रत्येक देखने वाला कहता ।" इतना कहते-कहते पूनमी के नेत्रों से अश्रुकण निकल पड़े ।

"किन्तु तुम रो क्यों रही हो भाभी माँ । इसमें रोने की क्या बात है । तुमने ठीक ही उत्तर तो दिया है ।"

"भइया अब तो यह आँसू मेरे जीवन के साथी बन गये हैं ।"

"पर मैं इन्हें तुम्हारे निकट भटकने भी न दूँगा । मैंने तुम्हें प्रसन्न रखने का प्रण जो किया है । तुमने ब्याह के लिए कोई लड़की पसन्द की । जाने के पूर्व तुम्हारी सेवा के लिए बहू का होना आवश्यक है ।"

"सो मैं कर रही हूँ ।"

"भाभी माँ मुझे नाश्ता तो दो ।"

और दोनों उठकर दूसरे कमरे में चले गये ।

: ६ :

विवादी को चारपाई पर पड़े आज पन्द्रह दिन बीत गये किन्तु उसकी चोट की दशा और भी गिर गई । इलाज में भी कमी न

गया था परन्तु उसे उसका कोई समाचार अभी तक न मिला था। उसको इसी एक बात का दुःख था कि विवादी कालेज के साथ-साथ उसे भी भूल बैठा और इस बात की आशा उसे स्वप्न में भी न थी।

सुनीती तथा विवादी अपने से अधिक एक-दूसरे को प्यार करते थे। पढ़ाई समाप्त कर सुनीती को सदा के लिए अपना बना लेगा इस बात का वचन उसे विवादी ने दिया था और इसी आशा के कारण उन दोनों का प्रेम दृढ़ होता जा रहा था। उनके मार्ग में कोई कभी रोड़ा भी अटकायेगा यह उनके मस्तिष्क में कभी भी न आया था। एक जाति का होने के कारण उनके लिए जाति-पाँति का बन्धन व्यर्थ था। धनी तथा निर्धन का झगड़ा ही न था जो उनके एक होने में रुकावट डालता।

यह सब कुछ होते हुए भी विवादी कभी-कभी दुःखित हो जाता था और तब सुनीती की बहुत चेष्टा पर वह मुस्कराता। इसी प्रकार की एक घटना सुनीती को अभी तक स्मरण थी। बात कुछ इस प्रकार से हुई थी। उस दिन लाख प्रयत्न करने पर भी वह विवादी के मुख से दुःख के चिह्न दूर न कर सकी थी।

तब वह खीज कर बोली "यह आप इस प्रकार उदास क्यों हो जाया करते हैं ?"

"तुम न समझ सकोगी सुनीती।"

"इतनी पुस्तकें पढ़ने पर क्या न समझूँगी ?"

"न समझ सकने का तो कोई प्रश्न ही नहीं। जबकि अभी तक न समझ सकी हो तो आगे भी समझने के लिए तुम्हारी आँखों से परदे न हटेंगे।"

''अब यह पहेलियां बुझाना बन्द कीजिये।'' और असली बात बताइये ?''

''शायद हम एक न हो सकें।''

''परन्तु क्यों ?''

'कोई विशेष कारण तो नहीं !''

''फिर यह कैसी बातें कर रहे हैं। अब तो हमें सृष्टि की कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती।''

''अब भी कोई है जो हमारा मार्ग रोककर हमें निराश कर सकता है !''

''कौन ?''

''विधाता।''

''विधाता !''

''हां विधाता ! यह वह शक्ति है जो अपने सामने किसी को भी नहीं आने देती।''

यही बात उसे आज खटक रही थी। कहीं विधाता सचमुच ही विवादी को उससे छीन लेने की योजना तो नहीं बना रही है। विवादी के न आने का क्या-क्या कारण हो सकता है ! परीक्षा निकट है, इस पर भी क्या ज्ञात नहीं कि सुनीती बिना उसकी सहायता के कुछ भी न कर सकेगी। कुछ भी हो आज वह अवश्य विवादी के घर जाकर पता लगायेगी।

सायंकाल की बेला। कोई सात का समय। सुनीती बस से उतर कर 'राज निवास' की ओर बढ़ी। किन्तु यह क्या आज 'राज निवास' में अन्धकार क्यों ? उसका हृदय धड़कने लगा। ऐसा न हो कि यह लोग कहीं बाहर गये हों ! वह बंगले के फाटक के निकट कुछ क्षण तक रुकी और फिर फाटक खोलकर उसने भीतर प्रवेश किया। बंगले के कमरे आदि से वह भली-

भाँति परिचित थी। क्योंकि इधर चार-पाँच महीने से वह कभी-कभी यहाँ आने लगी थी। विवादी की माँ सुनीती को देखकर बहुत प्रसन्न होती थी।

बँगले के वराण्डे में बूढ़ा नौकर बैठा हुआ था। वह सुनीती की पदचाप पहचान कर बोला "कौन बिटिया रानी ?"

"हाँ बाबा मैं ही हूँ।"

सुनीती को पहचान कर उसका जख्म फिर से हरा हो गया अश्रुधारा बह चली। किन्तु अन्धेरे में उसने अपनी निर्बलता प्रकट न होने दी। अँगोछा से आँसू पोंछकर बोला "भीतर जाओ बिटिया रानी। मालकिन भीतर हैं।"

"क्या बात है ! आज बँगले में यह अँधेरा क्यों ?"

"यह तो कोई नई बात नहीं।"

"क्या ?"

"जब बड़ा दीपक खो ही गया तो यह नन्हें दीपक क्या प्रकाश दे सकेंगे। जाओ भीतर जाओ बिटिया रानी, सब समझ जाओगी।"

सुनीती की समझ में कुछ भी न आया किन्तु किसी आशंका से उसका हृदय सिहर उठा। उसने काँपते पैरों से भीतर प्रवेश किया। विवादी के कमरे में नाममात्र के लिये एक दीपक टिम-टिमा रहा था। द्वार पर पहुँच उसने एक बार धीरे से विवादी को पुकारा। उत्तर न पाकर फिर भीतर झांका। कमरा खाली था। 'राज-निवास' में ऐसी निस्तब्धता छाई हुई थी मानो कोई है ही नहीं। वह फिर उसकी माँ के कमरे की ओर बढ़ गई। उसी प्रकार वहाँ भी दीपक का मंद प्रकाश फैला हुआ था। भीतर उसकी माँ को लेटी देख वह भी वहीं बैठ गई। दुर्गा रो रही थी। कुछ आहट पा उन्होंने करवट बदली। सुनीती को

देख उनका हृदय एक बार पुनः भर आया और आंसू दुगने वेग से बहने लगे।

सुनीती ने घबरा कर पूछा "चाची जी क्या बात है ?"

"बेटी तुम्हें नहीं मालूम ?"

"मालूम होने से पूछती ही क्यों ?"

"तू कालेज तो जाती है न, बेटी !"

"हाँ चाची जी। तब ही तो उनके बारे में पूछने आई हूं ?"

"क्या ?"

"यही कि वह कालेज क्यों नहीं आते ?"

"अब तो शायद वह कभी भी न जा सकेगा।"

"क्यों चाची जी ?"

"उसके दाहिनी कलाई की हड्डी टूट गई।"

"हड्डी टूट गई !"

"हाँ बेटी।"

"सो कैसे चाची जी।"

"यह न पूछ बेटी।"

"अच्छी बात है। पर इस समय वह हैं कहाँ ?"

"यही तो मैं भी नहीं जानती बेटी।"

"आप नहीं जानतीं तो कौन जानता है चाची जी ?"

"केवल भगवान्।"

"आप यह कैसी बातें कर रही हैं। साफ़-साफ़ बताइये क्या बात है ?"

"घबड़ाओ नहीं बेटी ! वह तो केवल हम सबका सुख, चैन और शान्ति लेकर कहीं अदृश्य हो गया है !"

"पहेलियाँ न बुझाओ चाची जी !"

"यह अभागिन अब पहेलियाँ बुझाने योग्य नहीं रही बेटी। इसकी सारी पहेलियाँ छिन चुकी हैं बेटी !"

"चाची जी, बताइये न बात क्या है !"

"बेटी तेरा विवादी सदा के लिए इस घर को छोड़ गया है।"

"घर छोड़ गये ?"

"हाँ बेटी ! आज पन्द्रह दिन हुए। सवेरे के समय अपने पिता से नाराज़ होकर बिना बताये कहीं चला गया।"

"चाची जी !"

"रो नहीं बेटी ! अब रोने से क्या लाभ ! अब भगवान् से प्रार्थना करो कि वह जहाँ भी रहे आराम से रहे।"

सुनीती इससे अधिक और न सुन सकी। रोती हुई कमरे से बाहर आ गई। विवादी के कमरे के सामने कुछ क्षण खड़ी रहने के पश्चात् वह कोठी के बाहर आकर अँधकार में विलीन हो गई।

: ८ :

कालेज का हॉल नगर के प्रसिद्ध व्यक्तियों से खचाखच भरा हुआ था। विभाग अनुसार बैठने का प्रबन्ध किया गया था। स्त्रियों का स्थान अलग था। कार्यक्रम आरम्भ होने में अभी कुछ समय शेष था। लोग बेचैन हो शेखरू को देखने की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रान्त के राज्यपाल को सभापति बनाया गया था।

यकायक बाहर शोर मच जाने से सबका ध्यान उसी ओर को आकृष्ट हो गया। सभा के कार्यकर्त्ता शेखरू को मार्ग देते हुए मंच की ओर ले जा रहे थे। शेखरू को अपने स्थान पर बिठाकर भीड़ फिर वापस चली गई। कुछ क्षण पश्चात् राज्य-

पाल भी पधारे। जब वह आकर सभापति के आसन पर बैठ गये तो 'हॉल' में निस्तब्धता छा गई।

उस दिन का मनोरंजक कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम एक विद्यार्थी ने स्वागत गान गाया। फिर एक छात्रा ने नृत्य किया। फिर कुछ लड़कों ने एक हँसने वाली नकल दिखाई। श्रोता गण हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। फिर बाजों की धुन सुनाई गई। इसी प्रकार यह कार्यक्रम कोई एक घण्टा तक जारी रहा। लोग देख-देखकर प्रसन्न होते रहे।

ऐसा सुन्दर कार्यक्रम होते हुए भी उन सब में दो प्राणी ऐसे भी थे जिनका ध्यान इस ओर न था। वे आपस में इस प्रकार बातें कर थे।

'शेखरू को तो तुमने पहचान लिया ?"

"इसमें भी कोई संदेह है ! वही न जो सभापति की बाईं ओर बैठा हुआ है।"

हाँ ! हाँ !! वही, परन्तु क्या उसके बजाय कुछ और देख रहे हो ?'

"क्या मैं अन्धा हूँ जो ऐसा पूछ रहे हो ! जो तुम देख रहे हो वही मैं भी देख रहा हूँ।"

"नहीं तुम वह नहीं देख रहे हो। तभी तो पूछ रहा हूँ।"

"तो तुम्हीं बताओ क्या देख रहे हो ?"

"सामने देखो शेखरू की बगल में कौन बैठा है ?"

"राज्यपाल !"

"नहीं जी, दूसरी ओर !"

"एक स्त्री !"

"हाँ अब तुमने देखा। वह स्त्री कैसी प्रतीत हो रही है ?"

"देखने सुनने में तो सुन्दर दिखाई देती है।"

"तब तुमने अपने बाल अवश्य धूप में सफ़ेद किये हैं !"

"और तुमने सफ़ेदी लगा कर।"

"जानते हो मैं तुमको क्या बताना चाहता हूँ ? जानते हो वह स्त्री जो तुम समझते हो उसके अतिरिक्त और क्या है ?"

"नहीं तो! आज से पूर्व तो मैंने इसे देखा नहीं। तो जानूंगा कैसे ?"

"और तुम देखोगे भी कैसे ? अपने नगर की बात तुम नहीं जानते और बनते हो हिन्दू समाज के नेता !"

"पर तुम कहना क्या चाहते हो ? शीघ्र कहो सारा कार्यक्रम समाप्त हुआ जा रहा है।"

"तुम कार्यक्रम के अतिरिक्त कुछ सुनना नहीं चाहते।"

"कैसे आदमी से पाला पड़ा है। न जान न पहचान देने लगे उपदेश।"

"तुम्हें बुरा लगा, न कहूँगा। पर समय निकल जाने पर पछताओगे।"

"अरे बाबा, अधिक भूमिका न बाँधकर तुम असल बात बताओ।"

"तो सुनो, वह स्त्री शेखरू की भाभी है।"

'तो फिर ?"

"और विधवा है।"

"तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?"

"और साथ-ही-साथ सुन्दर और जवान भी है !"

"तो क्या हुआ ? क्या विधवायें सुन्दर तथा जवान नहीं हो सकतीं ?"

"यह मैंने कब कहा। परन्तु यह अपने आचरण से गिर चुकी है। हिन्दू-समाज के लिए कलंक है।"

"सो कैसे ?"

"पति की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् यह अपने देवर इसी शेखरू के साथ माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध चली आई और अब यहाँ मजे उड़ा रही है।"

"तुमको कैसे मालूम ?"

मैं इसके पिता रामफल को जो लखनऊ के रहने वाले हैं भली-भाँति जानता हूँ।"

"तब तो समाज में ऐसे नीच मनुष्यों को इतना सम्मान न मिलना चाहिए !"

"यही तो मैं कहता हूँ।"

"अच्छा किया जो तुमने बता दिया।"

यह दोनों अपनी धुन में इतने खो गये थे कि उनको ज्ञात ही न हो सका कि सभा कब की समाप्त हो चुकी और लोग उठ-उठकर जा रहे हैं। वे दोनों भी उठकर चल पड़े।

शेखरू के विरुद्ध काँटे बोने वाले महाशय कोई अन्य नहीं बल्कि वही उसके पुराने शुभचिन्तक पूनमी के पिता रामफल थे और दूसरे महाशय इसी नगर के हिन्दू समाज के कट्टर हिन्दू नेता श्री गंगा धरू थे। रामफल अपना कार्य कर चुके थे। अतः और अधिक रुकना उनके लिए व्यर्थ था। वह पण्डित जी की दृष्टि बचाकर भीड़ में विलीन हो गये।

उधर पण्डित जी भीड़ को चीरते हुए शेखरू के निकट पहुँच गये। उन्होंने इस ओर ध्यान भी न दिया कि अब वह अपरिचित उनके साथ नहीं है। उन्होंने जब पीछे दृष्टि की तो उसको न पाकर निराश हो दूसरी ओर को मुड़ गये।

पण्डित जी वापस अपने घर की ओर चल पड़े। किन्तु उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि शेखरू की भाभी के प्रति

बताई बातें सत्य हैं तो वह इस छोकरे को अवश्य ही इसका फल चखायेगा। रामफल का पिलाया विष अपना कार्य कर रहा था।

: ९ :

परीक्षा समाप्त कर सुनीती अपने पिता जगदेवा के पास बनारस चली आई। यदि इस परीक्षा का झंझट न होता तो वह कब की आ गई होती। किन्तु इसी के कारण उसको इतने दिन और भी रुकना पड़ा। विवादी के बिना उसने बेमन से जो दिन लखनऊ में व्यतीत किये थे वह वही जानती थी। उसका स्मरण ही उसे काटने को दौड़ता था।

घर आ जाने पर उसे कुछ शान्ति मिली। पिता के स्नेह में वह अपने दुःख को भूलने लगी। किन्तु एक आघात ने उसके ज़ख्म को फिर हरा कर दिया। उसके हृदय में बड़े ज़ोर का धक्का लगा। बात इस प्रकार हुई थी कि उस दिन वह घूमकर वापस लौटी ही थी कि उसके पिता उसे बड़े कमरे ही में मिल गये।

उन्होंने सुनीती को पास बुलाते हुए बड़े ही प्यार से कहा "बेटी आज मैं तुमसे एक बात करना चाहता हूँ।"

"तो इसमें पूछने की क्या आवश्यकता है, पिता जी ?"

"बात कुछ ऐसी ही है बेटी।"

"तो कहिये न ?"

"मैं जो बात तुमसे कहने जा रहा हूँ वह बातें तुम्हारी माँ को कहनी चाहिए थीं—यदि आज वह जीवित होतीं। किन्तु अब तो मुझे ही सब कुछ कहना पड़ेगा। अधिक लम्बा न करके मैं तुमको संक्षेप में बताता हूँ। तुम्हारे ब्याह की बातचीत मैं पटना

के एक घराने से कर रहा हूँ। लड़का अकेला है। उसके साथ केवल उसकी एक भाभी रहती है। वह देखने में सुन्दर है एम० ए० में पढ़ता है। इस वर्ष कहानी की प्रतियोगिता में उसे एक लाख का पुरस्कार मिला है। तुम्हारे लिए हर प्रकार से उपयुक्त है। यही है सारी बातें जो तुम्हें बताना चाहता था। अब तुम सोचकर कल सायंकाल तक बताना।

"सोचने की कोई आवश्यकता नहीं। पिता जी, मैं तो ब्याह करना ही नहीं चाहती।"

"तो क्या अविवाहित ही रहेगी ?"

"हाँ पिता जी !"

"बेटी यह कैसे हो सकता है ?"

"मेरे विचार मैं तो आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिये।"

"मैं तुम्हारे किसी भी कार्य में रुकावट न डालूँगा। पर क्या समझा भी नहीं सकता ?"

मैं बच्ची तो नहीं पिता जी ! कुछ सोचकर ही ऐसा कह रही हूँ।"

"मुझसे साफ़-साफ़ कहो बेटी ! यदि तुमने किसी को चुन लिया है तो मैं उसी से तुम्हारे ब्याह की बात करूँ।"

"पिता जी।"

"तुम रो रही हो बेटी !"

"पिता जी अब तो भाग्य में रोना ही रोना रह गया है।"

"मेरे होते तुमको कौन रुला सकता है ?"

"वही जो सबको रुलाता है।"

"बेटी तुम इतनी अधीर क्यों हो रही हो ? उसका पता बताओ। मैं अपना सब कुछ देकर भी उसे मनाने का प्रयत्न करूँगा।"

"आपको इतना कष्ट न करना पड़ता पिता जी यदि वह अपने पिता से नाराज़ होकर घर से न चले गये होते।"

"तो इसमें रंज करने की क्या बात है बेटी। विधाता की यही इच्छा थी। किन्तु सोचो तो तुम्हारा कुँवारा रहना मैं सहन कर लूँ पर यह समाज और संसार कभी भी सहन न करेगा। तुम पर भाँति-भाँति के आरोप लगायेगा। कष्ट देगा। तुम्हारा बाहर निकलना कठिन हो जाएगा। तो फिर मेरे पश्चात् तुम किसका सहारा लोगी बेटी !" जो हो गया सो हो गया। उसे भूल जाओ। भगवान् की यही इच्छा थी। मेरा कहना मान लो बेटी। कम-से-कम एक बार तुम उनको देख तो लो फिर कुछ निश्चय करो। अगले सप्ताह वह और उनकी भाभी तुम्हें देखने आ रहे हैं।"

"तो आपने पहले ही सब कुछ पक्का कर रखा है।"

"इस आशा से कि मेरी बेटी मेरी बात को काटेगी नहीं !"

"जैसी आपकी इच्छा पिता जी।"

इतना कहकर वह वहाँ से चली गई। अपने कमरे में जाकर सोफे पर गिर पड़ी। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। विवादी की दीन मूर्ति उसके समक्ष आ गई और तब उसे ऐसा लगा कि मानो वह कह रही हो 'देखा न विधाता का लेख। ऐसी चाल चली है कि अब हमें एक-दूसरे से पृथक् होने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं है'। सुनीती अपनी दशा पर विलख कर रो पड़ी।

सुनीती के समक्ष अब दो प्रश्न थे—या वह पिता की बात को न मानते हुए विवादी की स्मृति में कुँवारी रहे या फिर पिता की बात को मान ले। दोनों बातें सोचना तो सरल थीं किन्तु उनका करना कठिन था। यदि वह विवाह करले तो विवादी का प्यार······और यदि न करे तो समाज में पिता का अपमान।

ओर वह उस पिता का जिन्होंने सदा ही उसकी अभिलाषा को पूरी किया ! सदा ही उसके सुख का ध्यान रखा।

वह न जाने कब तक इसी गुत्थी में उलझी रही किन्तु सफलता पूर्वक किसी भी निश्चय पर न पहुँच सकी और तब यह सोचकर कि उन लोगों के आने के पूर्व तो कुछ करना ही होगा वह घबड़ा उठी।

विचारों की धारा फिर भड़की। यदि आज विवादी होते तो क्या पिता जी उनसे ब्याह करने में रुकावट छोड़ते ? तब तो ऐसा कोई कारण नहीं था...तो फिर...विवादी ने सत्य कहा था कि वह शक्ति है जो अपने सामने किसी को भी नहीं आने देती। उसकी यही इच्छा थी कि हम एक न हो सकें · विवादी मुझे क्षमा करना।

कोठी की सफ़ाई तथा सजावट विशेष ध्यान रखकर की गई थी और क्यों न की जाती। क्या ऐसे अवसर बार-बार थोड़े ही आते हैं ! पिता की विवशता तथा समाज की निर्दयता का विचार कर सुनीती ने स्वयं को समय के अनुकूल बनाने का प्रयास किया और पूरा-पूरा श्रृंगार किया। उसकी सुन्दरता पहले से कहीं अधिक निखर आई।

गाड़ी का समय निकट आ गया। वह भी पिता के साथ स्टेशन चली। 'कार' वह स्वयं चला रही थी। स्टेशन पहुँच 'कार' को 'कार पार्क' में छोड़कर दोनों 'प्लेटफार्म' पर आ गये। गाड़ी आने में कुछ विलम्ब था। वह पिता के साथ 'बुक स्टाल' पर गई। सामने पड़े समाचार-पत्र के बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था "दिल्ली में गायन का विराट प्रोग्राम—देश के बड़े-बड़े गायक पधार रहे हैं ! तरुण गायक श्री सतांशू का नाम विशेष है।"

सुनीती सतांशू का नाम पढ़ते ही सोचने लगी। उसे ध्यान आया कि शायद इस नाम के किसी आदमी को वह पहले से जानती है। पर कब? कहाँ? और कैसे? उसे यह याद नहीं आ रहा था। वह बुक-स्टाल से हट आई। सामने निगाह पड़ते ही उसने देखा कि एक युवक उसे बड़े ध्यान से देख रहा है। उसे ऐसा लगा कि जैसे उसने कभी उस युवक को देखा है। वह भी उस पर से अपनी दृष्टि न हटा सकी।

युवक कुछ क्षण पश्चात् निकट आकर बोला—"क्षमा कीजियेगा! यदि मैं भूला नहीं हूँ तो आपका नाम सुनीती है—आप शायद अपने सहपाठी सतांशू को भूल गई हैं!"

"सतांशू बाबू आप! क्षमा कीजियेगा! मैं तो सचमुच ही आपको न पहचान सकी। कहीं जा रहे हैं शायद?"

"एक वर्ष से अधिक हो गया है हम लोगों को मिले हुए। ज़रा दिल्ली जा रहा हूँ।"

"गाने के प्रोग्राम में?"

"जी, बदनाम होने जा रहा हूँ।"

'सो मुझे मालूम है। कालेज के वे दिन मैं भूली नहीं हूँ। अच्छी तरह स्मरण है कि कालेज के हर उत्सव में आपके गाने का प्रोग्राम हुआ करता था।"

"रहने भी दीजिये यह बेकार की तारीफ़! यह स्टेशन कैसे आना हुआ?"

"'कार' से आई हूँ!"

इस पर दोनों हँस पड़े। हँसी कम होने पर वह आगे बोली—"कुछ मेहमान आनेवाले हैं उन्हीं को लेने आई हूँ और आइये पिताजी से भी आपका परिचय करा दूँ। पिताजी, यह हैं सतांशू बाबू—देश के प्रसिद्ध गायक—पहले मेरे सहपाठी थे। इस समय दिल्ली गाने के ही प्रोग्राम में जा रहे हैं।"

सतांशू ने नमस्ते किया और जगदेवा ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "आज रुककर कल चले जाइयेगा।"

"फिर कभी दर्शन करने आऊँगा···कल तो दिल्ली पहुँचना आवश्यक है।"

गाड़ी के आ जाने से स्टेशन पर शोर मच गया। सतांशू भी नमस्ते कर अपने सामान की ओर चला। उस अभागे को क्या ज्ञात था कि यह मेहमान कोई अन्य नहीं बल्कि वही उसकी वही पूनमी है जिसके कारण उसने अपना घर सदा के लिए छोड़ दिया था।

फर्स्ट क्लास से पूनमी तथा शेखरन दोनों बाहर आये। उसी क्षण सुनीती तथा उसके पिता उनके निकट पहुँच गये। सबने परिचय पाने पर एक-दूसरे से नमस्ते किया। शेखरन तथा सुनीती कुछ क्षण तक एक दूसरे को देखते ही रह गये। यह बात पूनमी से छिपी न रह सकी। वह स्वयं ही मुस्करा पड़ी।

कुली ने सामान उठाया और यह लोग बाहर आ गये। सामान को 'कार' के पीछे रखवा कर सब लोग कार में बैठ गये। तब सुनीती ने 'कार' को 'स्टार्ट' किया। कार रेंगने लगी। पूनमी तथा जगदेवा पीछे बैठे थे तथा शेखरन और सुनीती आगे।

दोनों चुप थे किन्तु उनके हृदय में विचारों का एक तूफ़ान-सा उठा हुआ था। इसका वह अनुभव कर रहे थे। कभी-कभी वे एक-दूसरे को कनखियों से देख भी लेते थे।

'कार' बँगले में पहुँच गई। यह लोग उतर कर भीतर गये। शेखरन को उसके कमरे में पहुँचाकर पूनमी को लेकर सुनीती अपने कमरे में चली गई। उसके सोने का प्रबन्ध सुनीती ने अपने ही कमरे में किया था।

स्नान-घर से स्नान कर पूनमी जब बाहर आई तो सुनीती को ऐसा लगा कि आज के पूर्व भी इसने इन्हें कहीं देखा है।

कुछ क्षण तक सोचने पर भी वह स्मरण न कर सकी। पूनमी के वस्त्र बदलते ही वह उसे लेकर नाश्ते के लिए दूसरे कमरे में चली गई। वहाँ पर इन लोगों की प्रतीक्षा पहले ही से की जा रही थी। पहुँचते ही नाश्ता आरम्भ हुआ।

जगदेवा ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा, "देखो बेटी मेह-मानों के सुख का ध्यान रखना। नौकरों पर अधिक भरोसा न करना।"

सुनीती ने कोई उत्तर न दिया केवल शेखरन की ओर देखकर मुस्करा दिया कि जैसे कह रही हो 'देख रहे हैं न आप! इन्हें नहीं मालूम कि बिना इनके बताये ही मैंने यह भार अपने ऊपर ले लिया है।'

तब उन्होंने शेखरन की ओर देखकर कहा, "बेटा तुम तो कुछ खा ही नहीं रहे हो।"

"जी नहीं, देखिये न! मैं तो खाने पर ही दोनों हाथों से लगा हुआ हूँ। मिठाइयाँ तो सचमुच ही बड़ी स्वादिष्ट हैं।"

वह हँसते हुए बोले, "यह सब सुनीती ने स्वयं बनाया है।"

शेखरन ने चुटकी लेते हुए कहा, "तब तो मिठाई वालों का धन्धा छीन लिया इन्होंने!"

इस पर सब खिलखिला कर हँस पड़े। सुनीती लज्जावश सिकुड़ गई। चाय के समाप्त हो जाने पर संध्या को गंगा में 'बोटिंग' का प्रोग्राम बना। इसके पश्चात् सब लोग विश्राम के लिए अपने-अपने कमरों में चले गये।

कमरे में पहुँचकर पूनमी तो पलंग पर लेट गई और सुनीती उसके निकट कुरसी पर बैठ गई। पूनमी कुछ क्षण उसके मुख की ओर देखकर यह सोचती रही कि अब बात किस प्रकार आरम्भ की जाय।

निश्चय कर लेने के पश्चात् वह बोली, "सुनीती बहन, क्या तुम्हें ज्ञात है कि हम लोग यहाँ क्यों आये हैं ?"

"दीदी, केवल इतना ही जानती हूँ कि आप लोग दो दिन यहाँ रहकर वापस चले जायेंगे।"

पूनमी उठकर बैठ गई।

"बस इतना ही !"

हाँ दीदी, बस इतनी ! अब आपसे मेरा एक अनुरोध भी है !"

यह सुनकर पूनमी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कुछ ही क्षणों की जान-पहचान में यह सुनीती मुझसे कैसा अनुरोध करने बैठ गई है !

वह प्यार से बोलो, "क्या बात है बहन ?"

"दीदी, मैं आपसे छोटी हूँ अतः आप केवल मेरा नाम लेकर पुकारिये।"

"अभी से इतना अनुराग क्यों सुनीती बहन ?"

"न जाने दीदी क्यों आपको देखकर मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मेरा सुख और मेरी शान्ति सब आप ही के पास है। ऐसा क्यों है दीदी मेरी समझ में स्वयं भी नहीं आ रहा है !"

"अब तो तुम कविता करने लगीं।"

"न दीदी मैं सच कह रही हूँ। क्या आप कुछ दिन और नहीं रुक सकतीं ?"

"तुम्हें देख लेने के पश्चात् मेरा हृदय भी यही कह रहा है। या तो स्वयं रुकूँ या फिर तुमको कुछ दिनों के लिए अपने साथ ही ले जाऊँ।"

"इस एकान्त वातावरण से निकाल कर यदि आप कुछ दिनों के लिए मुझे ले चलतीं तो बहुत अच्छा होता।"

"सो तो होगा ही बहन ! अब तो मैं तुम्हें अवश्य ही ले जाऊँगी। तुमसे अलग रहना अब मुझे भी कठिन-सा लगने लगा है। मेरी भी सुख तथा शान्ति तुम्हीं हो।"

"दीदी..."

उसे अपने पास प्यार से बिठाकर पूनमी ने कहा, "क्या मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करोगी ?"

"आज्ञा दो दीदी प्रार्थना कर मुझे नीचे न गिराओ।"

"मैं यहाँ क्यों आई हूँ यह कदाचित् तुमको नहीं ज्ञात। मैं अधिक न बढ़ाकर तुमको केवल दो ही शब्दों में बताती हूँ। मैं तुम्हें सदा के लिए अपनाने आई हूँ।"

"दीदी, मैं आपका मतलब नहीं समझी !"

"इतनी सीधी सी बात भी नहीं समझीं ! समझने का थोड़ा प्रयास तो करो। मैं तो अब तुम्हें सदा के लिए ही अपने पास बुला लूँगी।"

सुनीती कुछ न बोली !

"अतः तुमसे प्रार्थना है कि अस्वीकार न करना।"

अनायास ही सुनीती ने झुककर उसके पैरों का स्पर्श कर हाथों को मस्तक से लगा लिया। दूसरे ही क्षण उसे जोर का धक्का लगा कि न जाने किस अज्ञात शक्ति ने उससे ऐसा करा दिया।

पूनमी उसे अंक में भरती हुई बोली, "हमारे जाने के पूर्व तुम शेखरन को समझ कर अपने हृदय की बात मुझे बताना।"

किन्तु सुनीती उससे चिपकी यह सोच रही थी कि किस-किसको समझने का प्रयास करूँ—स्वयं को या शेखरन को ! भगवान् तुमने मेरे लिए यह कैसी कठिन समस्या खड़ी कर दी है ? मैं क्या निश्चय करू कुछ भी समझ में नहीं आता। मेरे

लिए विवादी का त्यागन उतना ही दुर्लभ है जितना दो पर्वतों के बीच बन गई गहरी खाई को पार करना। न कर देने पर पिताजी अवश्य ही कोई अन्य घर देखेंगे। फिर···यदि विवाह न करने का निश्चय कर लूँ। तो ? कुल की मर्यादा, लोक-लाज और फिर क्या यह समाज मुझे जीने देगा। यदि उस स्थिति का सामना करने के लिए स्वयं को संयमी बना भी लूँ तो भी इस सरल हृदया नारी के स्नेह को क्योंकर ठुकरा सकूँगी—भगवन् ! दिन-प्रतिदिन मुझे परिस्थितियों के शिकंजे में क्यों जकड़ते जा रहे हो ?

संध्या का समय था। चारों ओर मन्द-मन्द वायु चल रही थी। पंछी अपने घोंसलों की ओर उड़ते चले जा रहे थे। गंगा का आवरण शांत था।

छोटी-सी एक नौका पर शेखरन तथा सुनीती बैठे हुए थे और मांझी पतवार चला रहा था। जगदेवा ने इनके साथ आना ठीक न समझा और पूनमी जी न अच्छा होने का बहाना कर रुक गई। उन्होंने यह अवसर इन दोनों को जान-बूझकर दिया था। दोनों चुप थे। किसी को बात न करने का सूत्र न मिलता था। शेखरन को यह चुप्पी बहुत अखर रही थी। अन्त में थककर उसने बात आरम्भ की।

"कैसा सुन्दर दृश्य है !"

"जी !"

"देखिये न, ऐसा प्रतीत हो रहा है··ऐसा प्रतीत हो रहा है······"

"क्या ?"

"आप हँस रही हैं ?"

"आपने हँसाने का अभिनय जो किया !"

"जी ! मैं कोई अभिनेता नहीं हूँ।"

इस पर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। अब उनकी हिचक काफी दूर हो चुकी थी। शेखरन तनिक रुककर पुनः बोला—

"आपसे मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"तो मैंने मना कब किया।"

"धन्यवाद! मेरे आने का कारण तो आपको ज्ञात ही हो चुका होगा?"

"जी··· ?"

"तब तो मेरी समस्या बहुत सरल हो गई···"

"आप चुप क्यों हैं?"

"··· ···"

"क्या सोचने लगे आप?"

"सोच रहा हूँ कि······"

"हाँ, हाँ कहिये न, रुक क्यों गये।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि कहूँ किस प्रकार?"

"बात जाने बिना कहने का ढंग क्योंकर बता सकती हूँ?"

"सो बात नहीं···"

"तो क्या बात है?"

"आप सुनकर रुष्ट तो न होंगी?"

"इसमें रुष्ट होने की क्या बात! बात तो कहेंगे कोई मारेंगे तो नहीं।"

"बात यह है कि आप ऐसी सुन्दर युवती मैंने प्रथम बार ही देखी है?"

"जी···"

"जी हाँ···मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं बिना आपके सहारे एक सीढ़ी भी न चढ़ सकूँगा।"

"जी···मैं आपका मतलब नहीं समझी?"

"अब और किस प्रकार आपको समझाऊँ ! क्या भाभी माँ ने आपको कुछ भी नहीं बताया ?"

"यह उन्हीं से पूछ लीजियेगा ।"

"वह तो आपको पसन्द कर चुकी हैं ।"

"तो फिर मेरी भी पसन्द उन्हीं से जान लीजिए ।"

इतना कहते-कहते सुनीती का सिर मारे लज्जा के झुक गया। शेखरन उसकी लज्जा देखकर इस परिणाम पर पहुँचा कि सुनीती इस ब्याह से प्रसन्न है। इस परिणाम पर पहुँचते ही उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। सुनीती की सुन्दरता को देखकर उसका हृदय उसकी ओर खिचा आ रहा था।

सुनीती जिस क्षण नौका की सैर के पश्चात् घर पहुँची तो कमरे में पूनमी उसी की प्रतीक्षा में बैठी मिली। वह उठकर उसके निकट आई। इस समय उसके हाथों में सोने का कंगन था। सुनीती का लजीला मुख देखकर उसके हृदय की बात समझने में पूनमी को कठिनाई न हुई थी। उसने मुस्कराकर वह कंगन उसकी कलाई में पहना दिया। सुनीती ने झुककर उसका पद-स्पर्श किया और पूनमी ने उसे प्यार से उठाकर हृदय से लगा लिया।

: १० :

नगर के 'पब्लिक पार्क' में भीड़ लगी हुई थी। हिन्दू समाज के पतन पर व्याख्यान था। लोग पधारे हुए नेता गण का भाषण सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे। यह नेता-गण कहीं बाहर से नहीं आये थे। सब यहीं इसी नगर के रहने वाले थे। परन्तु थे इस प्रकार के जो अपनी बड़ाई के लिए बातों का पुल बाँधते न

थकते ग्रौर जहाँ बलिदान,का समय आता तो इनमें से कोई भी न दिखाई पड़ता। आज के भाषण में गंगाधरन का नाम मुख्य था।

गंगा धरन के हृदय में उस दिन एक अपरिचित द्वारा ज्ञात हुई बातें कांटे की तरह चुभ रही थीं। उनके नगर में ऐसी बात हो जाये और उन्हें ज्ञात ही न हो यह कितनी बड़ी लज्जा की बात है ! उस अपरिचित से तो उनसे फिर मुलाकात न हुई थी अतः सारी बातें जानने के लिए उन्हें स्वयं कष्ट उठाना पड़ा था। यदि किसी की भलाई का काम होता, सम्भव था वह कभी भी न आगे आते। किन्तु किसी की बदनामी, हानि तथा बुराई के लिए वह सदा ही आगे रहते थे।

मंच पर खड़े होते ही एक बार स्वयं-सेवकों ने उनकी जय-जयकार बुलाई। उनका मस्तिष्क घमण्ड से ऊँचा हो गया। फिर उन्होंने नेत्र बन्द कर भगवान् का ध्यान किया, जैसे कि धार्मिक नेता करते हैं। और तब अपना भाषण आरम्भ किया। लोग सुनने में लीन थे। समय-समय पर ताली भी बजाने लगते।

उनके व्याख्यान का सार यह था कि 'सपोले को पालना मूर्खता है। ऐसे मनुष्य को जो केवल आपके साथ ही नहीं बल्कि सारी हिन्दू जाति से विश्वासघात करे उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। आप लोग अपने समाज पर किसी भी प्रकार का आघात सहन न करें। आपने सदा ही धर्म की रक्षा करने में मेरी सहायता की है। कहीं दूर नहीं बल्कि आपके नगर में ही यह कुकर्म हो रहा है। आपका कर्त्तव्य है उस आदमी को दण्ड दें। समय-समय पर आपको स्मरण कराना मेरा कर्त्तव्य है।' बात ही बात में शेखरन की ओर उन्होंने संकेत भी कर दिया। फिर हिन्दू-धर्म की जय-जयकार हुई। इसके पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हो गया। लोग उठकर जाने लगे। गंगा धरन भी घर की ओर चल

वह अभी कुछ ही दूर गये होंगे कि रामफल उनसे आकर मिल गये। उन्हें देख उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अप्रसन्नता दिखाते हुए बोले—"उस दिन के पश्चात् तो तुम मिले ही नहीं !"

रामफल ने मुस्कराकर कहा, "समय न मिला।"

"और उस दिन भी मेरा साथ छोड़कर बिना बताये ही चले गये ?"

"उस दिन मुझे जल्दी थी। उस समय तुम्हारा ध्यान दूसरी ओर देख मैंने टोकना ठीक न समझा। इसीलिए बिना बताये ही चला गया।"

"अच्छा छोड़ो, तुमने अपना कुछ परिचय तो दिया ही नहीं।"

"मेरा इतना ही परिचय बहुत है कि तुम मुझे देखते ही पहचान लो।"

'तुम सचमुच ही बड़े विचित्र हो !"

"और तुम मुझसे भी अधिक ! भाषण में सारी बातें तुमने कह दीं और ऐसा कहा कि जैसे कुछ कहा ही न हो।"

"तो क्या तुम बैठे सुन रहे थे ?"

"और नहीं तो क्या ? किन्तु क्या कुछ नया समाचार ज्ञात हुआ है ?"

"क्या ?"

"दुनिया की आंखों में धूल झोंकने के लिए शेखरन ब्याह कर रहा है !"

"अच्छा···!"

"हां ! और इसके लिए प्रयास कर रही है उसकी वही कुलटा भाभी !"

"पर यह क्यों ?"

"जिस पर दुनिया समझे कि उस पर लगाये गये आरोप असत्य हैं !"

"तुम लाते हो बड़ा गुप्त समाचार ! कैसे जान जाते हो ?"

"यह न पूछो । पर हाँ, विश्वास रखो कि जो भी बात मैं तुमको बताऊँगा वह सत्य होगी ।"

"अच्छी बात है । तो अब मैं सर्वप्रथम इस व्याह को रोकने का प्रयास करता हूँ ।"

"केवल यही नहीं, बल्कि इस प्रकार उसका प्रत्येक प्रयास विफल करना होगा । समय-समय पर मैं तुमको सहायता देता रहूँगा ।"

"अरे बस···चल दिये · विचित्र जीव हो !"

रामफल बिना कुछ कहे दाहिनी मोड़ पर मुड़ गये । वह उनको न रोक सके । सारे मार्ग में अब वह इस नई समस्या को सुलझाने में लगे रहे किन्तु सफल न हुए । घर पहुँचकर पगड़ी खूँटी पर टाँगकर तथा जूता उतार कर वह पलंग पर लेट गये । नेत्र मूँदकर सोचने में फिर लीन हो गये ।

काफी देर तक व्याकुलता के साथ सोचते रहे और तब उन्होंने यही निश्चय किया कि क्यों न शंकरन के होने वाले ससुर को पत्र द्वारा सारी बातें बता दें । किन्तु उनका पता ठिकाना··· । वह इस विचार पर मुस्करा उठे । जैसे कह रहे हों कि यह कौन-सी कठिन बात है !

: ११ :

विवादी ने घर छोड़ते ही यह निश्चय कर लिया था कि कभी वह घर वापस न जायगा । पर मन जब थोड़ा-सा शांत हुआ तो अपनी भूल ज्ञात हुई । उसने अपनी स्थिति पर ध्यान दिया । जेब खाली तथा दाहिना हाथ बेकार । इस दशा में वह

किस प्रकार अपना पेट भर सकेगा ? चारों ओर उसने दृष्टि घुमाई किन्तु कहीं से भी उसे आशा की एक झलक तक न दिखाई पड़ी।

समय के प्रवाह के साथ-साथ उसका मन भी बदल गया और इसी से अब हर प्रकार का कार्य करने को तैयार था जिससे उसका पेट भर सकता हो। अतः उसने प्रत्येक क्षेत्र में नौकरी की खोज की। अन्त में कठिन खोज के पश्चात् उसको सड़क बनाने वाले एक ठेकेदार के यहाँ 'मेट' की नौकरी ५० रुपया मासिक पर मिल गई। उसके लिए यह छोटी-सी आय ही बहुत थी।

ठेकेदार ने जो इतनी दया की थी सो उसके पीछे क्या भेद था, विवादी को नहीं ज्ञात था। वह जानता भी कैसे ! क्योंकि एक तो वह नया था तथा दूसरी ओर उसे ध्यान देने की आवश्यकता भी न थी। उसे तो केवल नौकरी से काम था सो वह उसे मिल गई थी। किन्तु ठेकेदार कोई कम बुद्धि वाला मनुष्य न था। जीवन के यह साठ वर्ष उसने योंही नहीं विताये थे। न जाने कितने प्रकार के लोगों से उसका पाला पड़ चुका था। उसने अपने केश यों ही धूप में सफेद नहीं किये थे। वह तो बड़ा ही अनुभवी था।

उसके एक रूपवती कन्या माला थी, किन्तु थी वह समाज की ठुकराई हुई। यहाँ तक कि विवाह के पूर्व ही वह गर्भवती रह चुकी थी और यही बात उसके विवाह के मार्ग में रोड़ा अटका रही थी। अब जो ठेकेदार को अपनी ही जाति का एक अपरिचित कुँवारा युवक मिला तो उसे खो देना उसने मूर्खता समझी। उसने निश्चय किया कि नौकर रखने के पश्चात् दोनों का व्याह चुपचाप कर दूँगा। यही सोचकर उसने माला और विवादी को मिलने-जुलने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी। यहाँ

तक कि विवादी के हाथ का इलाज भी वह अपने पैसों से कराने लगा। उसके रहने-सहने, खाने-पीने तथा कपड़े इत्यादि का ध्यान माला ही रखती थी।

माला ने यौवन के नशे में एक बार किसी के बहकाने पर एक भूल कर डाली थी। अतः वह अपने किये पर स्वयं लज्जित थी। इस पश्चात्ताप में जलते रहने से कहीं अच्छा उसने उस जीवन को समाप्त कर देना ठीक समझा। कई बार उसने आत्महत्या करने का प्रयास भी किया किन्तु प्रत्येक बार बचा ली गई।

कुछ दिनों पश्चात् संताप की यह आग मंद पड़ते-पड़ते सदा के लिए बुझ गई। माला पहले की भाँति फिर खिल उठी। उसका उतरा मुख फिर से चमक उठा। उसके मन में उस पूर्व-किये कार्य की ग्लानि नाममात्र को भी न रह गई। उसके रक्त में फिर पहले वाली गरमी आ गई। वह भूल गई थी कि वह क्या कर चुकी है बल्कि अब वह इस खोज में रहने लगी थी कि इस अग्नि को किस प्रकार ठंडा किया जाय? गिरते हुए को सम्भालना उतना ही कठिन है जितना, संभले हुए को गिराना। जिस गर्त में माला गिर चुकी थी उसमें से निकलने का प्रयास तो उसने अवश्य किया था किन्तु उसे सद्मार्ग पर लगाने वाला कोई न मिला। पिता की ओर से वह किसी भी प्रकार का सहारा या नियंत्रण न पाकर बजाय ऊपर आने के और भी नीचे जाने लगी।

और फिर उसके जीवन में एक दिन न जाने कहाँ का भूला-भटका त्रिवादी आ गया। उसकी सारी आशायें, सारे विचार तथा सारा प्यार उसी विवादी पर केन्द्रित हो गया। वह उसे पाने के लिए, उसे अपनाने के लिए प्रेम-तपस्या में लीन हो गई।

उसे लुभाने के लिए नित्य नये शृंगार करती। उसकी जीवन-धारा का प्रवाह विवादी के आ जाने से क्यों उसकी ओर मुड़ गया था यह वह स्वयं भी नहीं जानती थी। इधर कुछ दिनों से उसे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि जब विवादी उससे दूर रहता है तो उसका मन व्याकुल हो उठता है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता और कभी-कभी तो वह इतनी अधीर हो जाती है और सोचती है कि विवादी उसका सुख, चैन तथा शान्ति सब लेकर चला गया है? और छोड़ गया है उसके लिए केवल अपना वियोग। किन्तु उसकी स्वतंत्रता को देखकर ठीक-ठीक यह नहीं कहा जा सकता था कि विवादी वह पहाड़ी नहीं है जिसके सहारे उसकी जीवन धारा रुक जायगी।

इधर विवादी भी यहाँ आने के पश्चात् एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन पा रहा था। काम पर उसका मन न लगता था। उसके नेत्रों के समक्ष सदा ही माला की मूर्ति नाचा करती। माला के आकर्षण तथा प्यार ने सुनीती को उसके हृदय से निकाल फेंका था। प्रत्येक क्षण माला ही के पास रहे वह ऐसा अवसर खोजा करता था।

सन्ध्या के समय काम से लौटकर वह भोजन के लिए चौके में जा बैठा। माला ने थाली आगे बढ़ा दी और उसने भोजन आरम्भ किया। दोनों कुछ समय तक चुप रहे। माला के मस्तिष्क में पिता की वह बातें जो दिन में उसे ज्ञात हुई थीं चक्कर काट रही थीं। ठेकेदार ने उसे साफ़-साफ़ बता दिया था कि वह उसका ब्याह विवादी से करना चाहते हैं और इसीलिए वह उसका पूरा-पूरा ध्यान रखे। माला कितनी भी नीच क्यों न थी किन्तु उसका मन विवादी को धोखा देना नहीं चाहता था। वह यहाँ तक बदल चुकी थी कि यदि मेरे बारे में अब कुछ जान

लेने पर भी विवादी मुझे अपनाये तो मैं अपने को उसके चरणों में अर्पित कर दूँगी। इसीलिए वह निस्तब्ध बैठी हुई सोच रही थी कि किस प्रकार इस बात को आरम्भ करे।

विवादी को यह निस्तब्धता अखर रही थी। माला सोचने में इतनी लीन थी कि उसे ध्यान न रहा कि विवादी ने बिना और रोटी माँगे चावल खाना आरम्भ कर दिया है। उसे भी समाप्त कर विवादी कुछ क्षण तक बैठा उसे देखता रहा।

"अन्त में मुस्कराता हुआ बोला—"क्या बात है माला ?"

"जी, कुछ तो नहीं।"

"कुछ कैसे नहीं, इधर देखो !"

"ओ ··"

इतना कह उसने थोड़ा चावल और थोड़ी दाल डाल दिया।

"क्या बात है आज ? तुम कुछ खोई-खोई-सी दिख रही हो।"

"जी, कुछ भी नहीं···चावल और दूँ ?"

"सो तो मैं माँग लूँगा। किन्तु पहले तुम मेरी बात का उत्तर दो।"

माला ने नेत्र उठाकर विवादी को देखा। उसके नेत्रों में अश्रुकण चमकने लगे। न तो यह बात विवादी से छिपी रह सकी और न वह स्वयं ही समझ सकी कि ऐसा क्यों हुआ ?

वह आश्चर्य से बोला—"तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों ?"

माला सिसकती हुई कमरे के बाहर चली गई। विवादी भी तुरन्त हाथ धोकर उठ खड़ा हुआ और माला के पीछे दौड़ा। निकट पहुँचकर उसके आँसुओं को अपनी रूमाल से पोंछ दिया।

तब बोला—"क्या मुझे न बताओगी ? किसी ने कुछ कहा है ?"

"मुझे कुछ भी नहीं हुआ।"

"तो फिर रोई क्यों ?"

"मैं तो अपने भाग्य पर रो रही थी। बड़ी ही अभागी हूँ।"

"मुझसे अधिक नहीं माला·· हम दोनों इस जग के सताये हुए हैं।"

"नहीं विवादी बाबू मैं आपसे अधिक हूँ।"

"तो क्या मुझे न बताओगी अपना दुःख ? मैं तुम्हारा दुःख दूर करने का भरसक प्रयत्न करूँगा। तुम एक बार मुझसे कहो तो ! मुझे अपना समझो तो !"

"सो तो आपके कहने की आवश्यकता नहीं। दुःख तो मुझे इसी बात का है कि आपको अपना समझकर अपने साथ अपने दुःख का भागी बनाने का साहस क्योंकर किया ?"

"बल्कि यह क्यों नहीं कहतीं कि मुझे अपना समझ कर मेरा दुःख छीन लिया। मेरे रोम-रोम में बस गई हो। माला मैं आज जो कुछ कहूँगा उसके लिए मुझे क्षमा करना। तुमने मुझ अभागे की जो सेवा की है उन सेवाओं ने मुझे तुम्हारा दास बना दिया है और अब तो मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन नीरस हो जायगा···।"

मेरी बातें सुनने के पश्चात् कदाचित् आप अपनी यह बातें बदल देंगे।"

"क्या कह रही हो माला। अपनी बात तो मैं न बदलूँगा। हाँ, कहीं तुमने मेरे प्यार को ठुकराया तो···।"

"ऐसा न कहिये विवादी बाबू। यही बात तो कह देने के लिए मैं अवसर की खोज में थी। मैं आपको प्यार करती हूँ किन्तु अपने स्वार्थ के लिए आपको धोखा देना नहीं चाहती। आप मेरी पूरी बात जान लेने के पश्चात् ही कुछ निश्चय कीजिये

मुझसे आपको लोक-निन्दा के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा। मैं अभागी संसार में कुलटा के नाम से पुकारी जाती हूँ। लड़कियाँ मेरी परछाईं से भागती हैं। समाज मुझसे बोलना पसन्द नहीं करता। वह मुझे आवारा कहता है। पर आपसे झूठ न बोलूँगी। दुनियां मुझे कुछ भी समझे पर आपसे सचसच बताऊँगी।"

इतना कहकर उसने विवादी के मुख पर दृष्टि गड़ा दी केवल यह जानने के लिए कि मेरी बातों का उस पर क्या प्रभाव पड़ा। फिर एक लम्बा श्वास छोड़कर आगे कहना आरम्भ किया, "कुछ दिन हुए मेरे यहाँ एक युवक नौकरी पर रखा गया। थोड़ा पढ़ा-लिखा होने के कारण पिता जी ने हिसाब-किताब का रजिस्टर उसी को सौंप दिया। कुछ दिनों तक कार्य करते रहने के पश्चात् वह घर के भीतर भी आने-जाने लगा। उसने मुझे देखा और मैंने उसे। हम दोनों युवा थे और वह सुन्दर था। कुछ दिनों के पश्चात् हम एक-दूसरे को प्यार भी करने लगे। किन्तु मैं उसे पहचान न पाई। उसके प्रेम में वासना थी। एक रात्रि पिता जी किसी कार्य से बाहर गये हुए थे। मेरी देख-रेख के लिए उसी को कह गये थे।"

विवादी बीच में ही टोक बैठा "क्या नाम था उसका ?"

माला ने घृणा से मुख बनाते हुए कहा "उस पापी का नाम न लेना ही अच्छा है। हाँ रात्रि को जब चारों ओर सन्नाटा फैल गया तो वह पापी मेरे कमरे में घुस आया और मेरी रजाई के भीतर लेट गया। मैं जाग पड़ी। इसके पूर्व कि मैं चिल्लाऊँ उसने मुझे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया और मेरे अधरों से अपने अधर मिला दिये। इसके पश्चात् मुझे नहीं ज्ञात कि क्या हुआ...प्रातःकाल पता चला कि वह किसी आवश्यक कार्य से अपने घर चला गया है। दिन बीतने लगे और वह लौट

कर न आया। फिर···फिर एक दिन मुझे ज्ञात हुआ कि मैं माँ बनने वाली हूँ। आप उस समय के मेरे कष्ट का अनुमान नहीं लगा सकते जो इस बात को जानकर हुआ। लाख छिपाने पर भी बात खुल गई। पिता जी ने सिर पीट लिया। वह मुझे लेकर लखनऊ चले गये। वहाँ एक मृत-बालक का जन्म हुआ। स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर मैं फिर यहीं वापस आ गई। मेरी बदनामी मेरे व्याह के मार्ग में रोड़ा अटका रही है··बात पक्की हो जाने पर भी टूट जाती है। अन्त में पिता जी भगवान् के सहारे मन मार कर बैठ गये।"

"तुम्हारी स्थिति तो बड़ी ही शोचनीय है। किन्तु बैठने से तो काम न चलेगा। समाज में रहते हुए उससे लड़ना होगा। तुम्हारा व्याह तो करना ही होगा।"

"सो तो ठीक है। इसीलिए तो पिता जी इस बार भी शुभ घड़ी की खोज में हैं जबकि उस लड़के से वह स्वयं बातें करें।"

"तो क्या इस बार उन्होंने फिर कोई लड़का पसन्द किया है?"

माला ने मुस्कराते हुए सिर हिला दिया।

विवादी उत्सुकता से बोला "कौन है वह? क्या उसे अभी तक तुम्हारे बारे में ज्ञात नहीं?"

"हाँ अब उसे कुछ ज्ञात हो चुका है। बल्कि यों कहिये कि मैंने ही उसे सब कुछ बताया है!"

'तुमने स्वयं ही अपने बारे में सब कुछ बता दिया! उसने क्या कहा?"

"मैं उसी के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

"तो क्या तुम दोनों एक-दूसरे को प्यार भी करते हो?"

"यह मैं अपने लिए कह सकती हूँ। किन्तु वह भी मुझे प्यार

करते हैं यह मैं निश्चय से नहीं कह सकती···विवादी बाबू आप बड़े भोले हैं···इस बार पिता जी आप ही से बातें करने वाले हैं। मैं यह नहीं चाहती कि आपको किसी भी प्रकार का धोखा दिया जाये। क्या अब भी आप मुझसे प्यार करने को तैयार हैं ? क्या अब भी आप मुझसे ब्याह करेंगे ?"

इतना कहते-कहते माला का हृदय भर आया और नेत्रों से अश्रुकण उसके कपोलों पर ढुलक आये।

"माला तुमने एक साथ इतने सारे प्रश्न कर मेरे हृदय पर बज्राघात किया तुमने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। मेरा प्रेम अटल है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और करता रहूँगा ! तुम्हारे ऊपर जो अन्याय हुआ है मैं भी उसका भागी बनूँगा। तुम केवल इतना बता दो कि क्या मेरे प्यार का बदला प्यार से दे सकोगी ? यदि देने का निश्चय है तो मैं तुम्हें सदा के लिए माँग लूँगा।"

माला ने अपना सिर विवादी के सीने पर रख दिया और विवादी ने उसे अपने बाहुपाश में कस लिया। उसने उससे यह निश्चयात्मक उत्तर केवल इसलिए चाहा था कि कहीं उसका बढ़ा हुआ पग और आगे न बढ़ जाये।

: १२ :

पूनमी की उदासी दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही थी। उसके हृदय में कभी-कभी ऐसी पीड़ा होती जिसका वह केवल अनुभव कर पाती किन्तु किसी से बताने का साहस न करती। उसे भय था कि कहीं उसके हृदय का चोर न पकड़ा जाय। उस का स्वास्थ्य भी दिन-प्रति-दिन गिरने लगा। उसके हृदय में प्रत्येक क्षण भावनाओं की उथल-पुथल मची रहती। एकान्त उसे

काटने को दौड़ता। जब वह किसी नवविवाहित दम्पत्ति को देखती तो उसका शरीर किसी अज्ञात आनन्द से काँप उठता। हृदय में एक टीस उठती और तब वह पलंग पर लेटकर हृदय को दबाती। फिर अपनी असमर्थता पर सिसक उठती।

वह सोचती कि उसने कौन-सा पाप किया है जो उसे यों विरह की अग्नि में जलना पड़ रहा है? वह यदि विधवा हो गई तो इसमें उसका क्या दोष! उसके माँग का सिन्दूर सदा के लिए पोंछ देने का किसी को क्या अधिकार? उसके लिए हँसना, बात करना, शृंगार करना तथा किसी के यहाँ आना-जाना क्यों वर्जित कर दिया गया है? हँसते देख यह समाज वाले क्यों उसे शंका की दृष्टि से देखने लगते हैं? क्या वह मनुष्य नहीं? क्या उसको हँसने-बोलने का अधिकार नहीं? इसी प्रकार के लाखों विचार उसके हृदय में उठा करते।

वह इसी विद्रोह की अग्नि में जल रही थी। अभी तक उसमें इतनी शक्ति तो थी ही कि उठने वाले तूफ़ान को दबाने में सफल हो जाती थी किन्तु इधर कुछ दिनों से वह अपनी यह शक्ति भी खो बैठी थी। इतने बड़े अकेले घर में जहाँ हर काम उसकी इच्छानुसार होता था अब वह उन्हीं में त्रुटि निकालने लगी। नौकरों को डाँटती और कभी-कभी उनको नौकरी से अलग भी कर देती। कुछ दिनों पश्चात् फिर उन्हीं को वापस बुला लेती। उसका यह परिवर्तन किसी से भी छिपा न था। शेखरू को बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

इन सबसे कहीं अधिक विचित्र बात तो यह थी कि उसकी यह दशा शेखरू का ब्याह निश्चय कर आने के पश्चात् उसकी यह दशा हुई थी। उसे अब ऐसा लगने लगा था कि जैसे उसका शेखरू सदा के लिए उससे छिन जायगा। वह शेखरू जिसे वह

अपना समझती आ रही थी अब सदा के लिए किसी 'और' का हो जायगा। वह 'और' कौन ? जिसे शेखरू जानता भी नहीं। आकर उसके शेखरू पर अपना अधिकार जमा लेगी। यह शेखरू भी उसी में खो जायगा और अपनी पूनमी को भूल जायगा।

उसकी विचार-धारा इसी प्रकार आगे बढ़ती गई। वह कभी भी ऐसा न होने देगी। ऐसा सोचते-सोचते वह अपना मानसिक-सन्तुलन खो बैठती। उसका मन डाँवाँडोल हो जाता। उसका हृदय विरह की काल-कोठरी में भटकने लगता जहाँ से उसे बाहर निकलने का मार्ग भी न मिलता। वह भूल जाती कि शेखरू को क्या समझ कर और किस दृष्टि से देखती आ रही है। वह सोचती कि वह कौन-सी वस्तु है जो वह नव-विवाहिता दे सकती है और मैं नहीं ? वह यदि सुन्दर है तो मैं भी सुन्दरता में उससे कम नहीं। कुछ भी हो शेखरू पर उसका अधिकार है और आगे भी रहेगा।

फिर एक दिन उसने अपना कार्यक्रम वदल दिया। वह अब स्वयं ही शेखरू के सुख की सामग्री एकत्रित करती। वह शेखरू के लिए प्रत्येक वह वस्तु जुटाने का प्रयास करती जिसे देखकर शेखरू के अधरों पर मुस्कान खेलने लगती और तब वह भी अपनी सफलता पर मुस्करा उठती। वह शेखरू के हृदय में अपना इतना प्यार भर देना चाहती थी जिसे निकालने में वह नव-विवाहिता सफल न हो सके।

इधर कुछ दिनों से उसे एक प्रकार का दौरा आना आरम्भ हो गया। उसके दाँत बैठ जाते और वह अचेत होकर पड़ जाती। शेखरू तो पहले बहुत घबड़ाया किन्तु दौरा बराबर पड़ते देख उसकी वह घबड़ाहट दूर हो गई। डॉक्टर ने कहा कि इस प्रकार की बीमारी प्रायः इसी आयु में हुआ करती है। औषधि के

अतिरिक्त इसका सबसे बड़ा इलाज एक और है कि इनका मन सदा बहलता रहे।

डॉक्टर के कथनानुसार शेखरू अब पहले से अधिक समय तक उसके पास रहकर उसका मन बहलाता। शेखरू को अपने निकट देखकर पूनमी के अधरों पर हँसी खेला करती। शेखरन भी उसे देखकर स्वयं भी प्रसन्न रहता।

पूनमी कभी-कभी दौरा पड़ने पर अचेत अवस्था में उससे चिमट जाती। तब शेखरू के रोयें खड़े हो जाते और तब वह घबरा कर उसे अपने से अलग करने का प्रयास करता, किन्तु कर न पाता। चेतना वापस आने पर पूनमी अपनी स्थिति को देखकर रोती हुई अपने बिस्तर पर गिर पड़ती।

अविराम गति से उसका यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। पहले तो वह अचेत दशा में दौरा पड़ने पर ऐसा करती थी किन्तु अब वह इसी बहाने इससे आनन्द लेने लगी। इधर कुछ दिनों से सोचने लग गई थी कि क्या ही अच्छा होता यदि शेखरन मुझे यों ही अपने बाहुपाश में जकड़े रहे!

समय के प्रवाह के साथ-साथ उसके विचार भी बदल गये। यौवन के नशे ने उस पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। उसका वह ममता भरा हृदय जिसमें शेखरू के प्रति मातृत्व भरा हुआ था अब वही विनाश की ओर बढ़ने लगा था! इसमें उस बेचारी का क्या दोष! यदि मदिरा पान करने वाले को मदिरा न मिले तो वह क्या करे? यदि शिकारी को शिकार न मिले तो वह कहाँ जाय? यदि प्यार को प्यार न मिले तो वह किसका सहारा ले?

पूनमी की दृष्टि में यदि शेखरू का दूसरा चोला आ गया हो तो उसे दोषी कहना उचित नहीं। दुर्बलता किस मनुष्य में नहीं

है ? यह तो होना स्वाभाविक ही था। कहाँ तक बेचारी अपनी अभिलाषाओं का दमन करती रहे ? यह समाज वाले उसे क्यों इतना सता रहे हैं ? उनको उसकी दशा पर दया क्यों नहीं आती ? वह क्यों नहीं सोचते कि भूखे को भोजन, प्यासे को पानी तथा यौवन को यौवन मिलना क्यों आवश्यक है ?

समय का चक्कर बढ़ता ही जा रहा था तथा पूनमी के विचारों के लिए और भी बड़ा क्षेत्र बनाता जा रहा था और इसीलिए अब तो वह क्षण भी निकट आता जा रहा था जबकि पूनमी उसकी दृष्टि से सदा के लिए गिर जाय। किन्तु इसके पूर्व कि ऐसा हो और दुनिया वाले तथा स्वयं उसका शेखरू उसको कलंकनी की उपाधि दे विधाता ने उसकी वासना पर एक जोर की ठोकर लगा दी।

पूनमी का भाई विवादी सन्ध्या को माला के साथ आ पहुँचा। उनकी आवभगत में वह सारी योजना जो उसने शेखरन के चरणों में स्वयं को सौंप देने के लिए बनाई थी विफल हो गई। यदि वह दोनों न आ गये होते तो उसने शेखरन के चरणों में गिरकर अपने प्यार की भिक्षा माँग ली होती।

यदि मनुष्य का चाहा हो जाये तो उसे भले-बुरे की पहचान ही न रहेगी और न भगवान् ही अपनी सृष्टि को चला सकेंगे। उनके यहाँ देर है पर अन्धेर नहीं। वह अनेकों बार बुरे रास्ते पर जानेवाले प्राणियों को संभलने का अवसर देते हैं और फिर भी न संभलने पर उनके लिये दंड की व्यवस्था करते हैं। उनकी सभा में प्रत्येक के साथ न्याय होता है अन्याय नहीं। जिसका जो अधिकार है वह अवश्य पाता है। उससे अधिक लेने वाले को वह दंड देते हैं। पारस का काम है लोहे को सोना बनाना, चाहे वह वध करने वाला गंडासा हो या पूजी जाने वाली मूर्ति।

पारस को विचारने का अधिकार नहीं—उसे तो अधिकार सारा लोहे को सोना बनाने का कर्त्तव्य पूरा करना है। पूनमी के हृदय ने अपने अधिकार से अधिक लेने का साहस किया तो भगवान् ने उसके मार्ग में रुकावट डाल दी।

विवादी को देखकर पूनमी अपना सारा दुःख भूल गई। अपना निश्चित कार्यक्रम भूल गई। प्रसन्नता में उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। बहन को बीमार देख वह भी बिना रोये न रहा। कुछ क्षण पश्चात् जब मन ठिकाने आया तो वह बोला "दीदी तुमने अपनी यह क्या दशा बना रखी है?"

"कुछ भी तो नहीं भइया, बस यों ही थोड़ा-सा बुखार आ गया है।"

"वह तो मैं देख रहा हूँ। किसी की दशा तनिक से बुखार में इतनी नहीं बिगड़ जाती कि वह पहचाना भी न जा सके।"

"अरे हाँ, तुमने अभी तक यह तो बताया ही नहीं कि पिता जी तथा माता जी कैसे हैं?"

"अच्छे हैं"

"बस केवल अच्छे ही हैं। मेरा कुशल समाचार जानने के लिए ही उन्होंने तुमको भेजा है?"

"और हाँ दीदी, तुम इनसे तो मिली ही नहीं···यह हैं माला देवी।"

"क्षमा करना बहन···आओ मेरे पास बैठो···"

"अरे दीदी यह तुम्हारी बहन नहीं बल्कि होने वाली भाभी हैं।"

"क्या कहते हो भइया? साफ़-साफ़ बताओ कि बात क्या है?"

"दीदी यह तो बहुत लम्बी कहानी है। अब मैं संक्षेप में बताता हूँ।"

इसके पश्चात् उसने घर छोड़ने से लेकर और आज तक की सारी बातें पूनमी को संक्षेप में सुना दीं।"

"किन्तु यह तुमने अच्छा नहीं किया जो पिता जी से रूठ कर चले आये।"

"तो फिर मैं क्या करता दीदी। जब स्वयं उन्होंने मुझे घर से निकल जाने का आदेश दिया तो मैं कौन-सा मुँह लेकर वहाँ रहता···यदि तुम्हें मेरा आना बुरा लग रहा है तो मैं कहीं और रह कर हाथ का इलाज करा लूँगा···।"

"यह तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हारा आना और मुझे बुरा लगेगा ! क्या कह रहे हो भइया ? ऐसे अप-शब्द फिर न निकालना। वह बहन ही कैसी जो अपने भाई को देखकर प्रसन्न न हो !"

"तो इसमें रोने की क्या बात है दीदी ?···अब यह बताओ तुम्हारी होने वाली भाभी कैसी है ?"

"सचमुच ही भाभी मुझे पसन्द है।"

"चलो अच्छा हुआ। अरे शेखरन बाबू नहीं दिखाई पड़ते ?"

शेखरन का नाम सुनते ही पूनमी चौंक पड़ी। माला की अनुभवी दृष्टि तुरन्त उसके हृदय में पहुँच गई। उसे ऐसा लगा जैसे माला ने उसके हृदय का चोर पकड़ लिया है।

संभल कर बोली "कालेज गये हैं। उनकी परीक्षा हो रही है न ! आज परीक्षा का अन्तिम दिन है।"

"चलो अच्छा हुआ जो कल से उन्हें भी घूमने का अवकाश रहेगा।"

इसके पश्चात् पूनमी ने नौकर को बुलाकर इन लोगों के रहने का प्रबन्ध करने को कहा।

: १३ :

समय का खेल ! कहाँ ठेकेदार स्वयं ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे कि विवादी के साथ माला के विवाह की बातचीत करें, कहाँ विवादी ने स्वयं ही एक दिन इस बात को छेड़कर इस गुत्थी को सुलझा दिया। अपनी मनचाही बात पूरी होती देख उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

उसने विवादी को पास बिठाते हुए कहा "तुम्हारे मुख से ऐसी बात सुनकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ···फिर भी मैं एक बार माला से पूछना चाहता हूँ···"

"यह मैं उसी की अनुमति पाने के पश्चात् आपके पास आने का साहस कर पाया हूँ।"

"अच्छा भई, इसको मान लिया किन्तु अब एक और बात भी जानना चाहता हूँ। क्या तुम उसके जीवन में उजाला कर सकोगे ?"

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा !"

"आसान सी तो बात है। ब्याह के पश्चात् क्या तुम दोनों सुख से रह सकोगे ?"

"क्यों नहीं ! जब हम दोनों तैयार हैं तो सुख से जीवन क्यों न बिता सकेंगे। इसके अतिरिक्त आप यह जानकर और भी प्रसन्न होंगे कि माला के मुख से उसकी सारी कहानी को सुनने के पश्चात् मैंने यह निर्णय किया है जिसे जानकर कदाचित कोई अन्य उससे ब्याह करने को तैयार न होगा। किन्तु मैं उसकी सेवाओं को नहीं भूल सकता।"

"तो क्या सब कुछ जान लेने के पश्चात् भी तुम उससे ब्याह करने को तैयार हो ? जानते हो माला इस समय किस स्थिति में

है ? समाज ने उसे सदा के लिए ठुकरा दिया है और उसे अप-नाने वाले को भी समाज यही दंड देगा।"

"मैं आपका तात्पर्य समझ गया। ऐसी दशा में तो मैं अवश्य ही माला को अपना कर इस समाज को दिखा देना चाहता हूँ कि दुनियाँ में जीने का अधिकार सबको है। दोषी के लिए सबसे बड़ा दंड वही है जब वह अपने किये पर पश्चाताप करे। इस अबला को इन समाज के ठेकेदारों ने स्वयं षडयंत्र रच कर सदा के लिए दूध की मक्खी की भाँति निकाल कर फेंक दिया है। आज यदि यही माला बाज़ार में बैठकर अपनी सुन्दरता का मोल करना आरम्भ कर दे तो क्या इनके मुख पर कालिख न पुत जायगी ? इस दशा में यदि मैंने उसे अपनाने का निश्चय किया है तो कौन-सा पाप किया है ? आप निर्भय होकर आशी-र्वाद दीजिए। माला को अपना बनाने का निश्चय मैंने पक्का कर लिया है।"

"धन्य हो तुम ! मेरा आशीर्वाद सदा ही तुम्हारे साथ है। माला के व्याह करने का निश्चय कर तुमने मेरा झुका हुआ सिर एक बार फिर से ऊँचा कर दिया ··· कोई शुभ घड़ी देखकर मैं तुम्हारे चरणों में माला को सौंप दूँगा।"

"अब एक प्रार्थना और भी है। मैं कल अपनी बहन के पास पटना जाना चाहता हूँ। वहीं कुछ दिन रहकर अपना हाथ ठीक कराना चाहता हूँ।"

"खुशी से जाओ ! खर्च के लिए रुपया लेते जाना। और हाँ माला को भी साथ ले जाना, तुम्हारी देखभाल अच्छी तरह हो सकेगी।"

इस प्रकार सब कुछ ठीक हो जाने के पश्चात् विवादी पटना पूनमी के पास माला को लेकर आ गया था।

संध्या का समय था विवादी कहीं बाहर गया हुआ था। पूनमी दिन में अधिक बातें करने के कारण थकी हुई सो रही थी। नौकर काम में लगे हुए थे। केवल माला ही ऐसी थी जो कमरे में सोफ़े पर बैठी एक उपन्यास पढ़ने में लीन थी। समय का ज्ञान उसे न था।

शेखरन डॉक्टर के यहाँ से पूनमी की दवा लेकर आ रहा था। सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर जा पहुँचा। आजकल पूनमी ऊपर के कमरे में रहने लगी थी। बगल के कमरे में बैठी माला पर उसकी दृष्टि पीछे से पड़ी। वह जल्दी में माला को पूनमी समझ बैठा। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आज भाभी माँ का जी कुछ अच्छा है। उसको कुछ हँसी सूझी। वह दबे पग माला के पीछे जा खड़ा हुआ और हाथ बढ़ा कर उसकी आँखें बन्द करने ही वाला था कि चौंक पड़ा—अरे यह तो भाभी माँ नहीं बल्कि कोई दूसरा है। माला ने पीछे घूमकर देखा और लजाकर खड़ी हो गई।

शेखरन कुछ संभल कर बोला "नहीं नहीं ! आप बैठिये, आपके आने की सूचना भाभी माँ को अभी देता हूँ।"

माला ने एक बार फिर नेत्र उठाकर शेखरन को देखा। दोनों के नेत्र एक क्षण के लिए मिले और फिर झुक गये।

"किन्तु उनसे कहूँगा क्या कि कौन मिलने आया है ?"

माला कुछ न बोली।

"आप स्वयं ही जाकर उनसे मिल लीजिए।" वह उस सामने वाले कमरे में लेटी हैं !"

शेखरन इसी प्रकार माला से बातें कर रहा था कि विवादी कमरे में आ गया। विवादी को देख शेखरू प्रसन्नता से हाथ बढ़ाता हुआ बोला "हलो विवादी···कब आये ?"

"दस बजे वाली गाड़ी से !"

इनको बात करता देख माला वहाँ से चली गई ।

"घर में तो सब लोग कुशल से हैं · और हाँ, तुम्हारे हाथ में क्या हुआ ?"

"यों ही तनिक चोट आ गई थी । और हाँ एक लाख के पुरस्कार के लिए मेरी बधाई स्वीकार कीजिए···"

"धन्यवाद ! आओ अपनी दीदी के पास चलो ।"

दोनों पूनमी के कमरे में पहुँचे । वह इस समय जाग रही थी । माला पहले ही से वहाँ बैठी हुई थी । इन लोगों को आता देखकर वह वहाँ से भी उठकर जाने लगी ।

पूनमी ने रोकते हुए कहा "भाभी कहाँ जा रही हो ? इनसे लज्जा ! सो किस लिए ?"

इस अपरिचित के लिए पूनमी के मुख से भाभी का शब्द सुनकर शेखरू को बड़ा आश्चर्य हुआ । वह गुमसुम-सा खड़ा माला को देख रहा था कि पूनमी ने आगे पूछा "बताओ तो मेरी होने वाली भाभी कैसी हैं ?"

"भाभी माँ मैं तुम्हारी बात नहीं समझा ?"

"इतनी सीधी-सी बात नहीं समझे ! यह तो मेरी होने वाली भाभी हैं !"

"सो···बात · नहीं भाभी माँ ! मैं तो इस होने वाली भाभी का मतलब नहीं समझा ।"

यह बच्चों का-सा प्रश्न सुनकर पूनमी एक बार फिर हँस पड़ी और माला तो शेखरन के भोलेपन पर मुग्ध हो गई । उसे ऐसा लगा कि जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसके हृदय को बलपूर्वक निकाल कर शेखरन की ओर ले जा रही है । उसने विवादी पर दृष्टि डाली और फिर शेखरू को देखा । उसके हृदय में उपेक्षा ने जन्म लिया । उसे ऐसा लगा कि जैसे वह शेखरन के समक्ष

कुछ भी नहीं है। उसका यह विचार अनायास ही उत्पन्न होकर उसके मस्तिष्क में जोंक बनकर काटने लगा।

पूनमी ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा, "अब मैं तुम्हें क्योंकर समझाऊँ? यों समझ लो कि भइया की होने वाली पत्नी!"

माला को लगा कि जैसे यह कहकर वह उसका अपमान कर रही है। वह वहाँ से उठकर चली गई।

"सब समझ गया भाभी माँ! लो यह अपनी दवा···कालेज से वापसी में लेता आया हूँ।"

दवा रखकर अपने कमरे में चला गया। उसके हृदय में विचारों की खिचड़ी पकने लगी। उसको ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई उसके मस्तिष्क को हिला-हिलाकर उससे कह रहा है कि माला अच्छे आचरण की नहीं है।

इधर माला को एक प्रकार की बेचैनी-सी अनुभव हो रही थी। शेखरन ने उसके लिए अब एक नवीन समस्या खड़ी कर दी थी। उसे ऐसा लगने लगा था कि वह स्वयं ही अब उसकी ओर खिंचती जा रही है। कभी विवादी और कभी शेखरन उसके सामने आते और अदृश्य हो जाते। वह कुछ भी निश्चय करने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी। उसका मन अब उसके वश में न था। अब विवादी उसके लिए एक आकर्षण-हीन वस्तु मात्र था।

समय की आँधी ने उसके हृदय में दबी हुई वासना को कुरेद कर नंगा कर दिया। वह वासना जिसे विवादी के निष्काम प्यार ने थपकियाँ दे-देकर सुला दिया था। वह वासना जिसका अंकुर उसके प्रथम प्रेमी ने बोया था! वह वासना जिसमें समय के प्रवाह से जागृति आ गई थी! वही वासना अब अँगड़ाई लेकर

उसे पुनः परास्त करने के लिए उठकर खड़ी हुई थी।

वह भूल चुकी थी स्वयं को, विवादी को, उसको दिए हुए वचनों को और अपनी स्थिति को। उसका मन उसके वश में न था। वह पागल-सी हो गई थी। शैतान ने अपने बनाये गर्त में उसे पुनः ढकेल दिया जिसमें से एक बार विवादी द्वारा वह निकल पाई थी।

समय का चक्कर उसे शैतान के संकेत पर लिए हुए नाचने लगा। उसकी दृष्टि में शेखरन वह मूल्यवान हीरा था जिसे किसी भी प्रकार पाने के लिए वह उत्सुक हो उठी। विवादी उसकी दृष्टि में वह खोटा मोती था कि जिसका फेंक देना अब उसके लिए आवश्यक हो गया था। वह प्रत्येक क्षण अब उस अवसर की खोज में रहने लगी जबकि शेखरन से दो बातें कर सके। दिन बीतते जा रहे थे और उसके हृदय की वह चिनगारी अब एक अंगारा बन गई थी। अब तो उसके लिए शेखरू से दूर रहना असम्भव-सा लगने लगा था।

शेखरन भी उसके इन लक्षणों का अनुभव कर रहा था—किस प्रकार घर में आये हुए एक अतिथि का अनादर किया जाय? प्रत्येक मोड़ पर तथा प्रत्येक अवसर पर वह अपने को बचाने का प्रयास करता रहता। उसको विवादी पर दया भी आ रही थी। वह सोचता कि जिस लड़की का आचरण इस समय इतना गिरा हुआ है वह अपने भावी पति का क्या ध्यान रखेगी?

विवादी भी इस बदली हुई अवस्था को ध्यान से देख रहा था। यह बात उससे छिपो म थी कि दिन-प्रति-दिन माला का व्यवहार उसके प्रति कुछ खिचा-खिचा होता जा रहा है। धीरे-धीरे वह उसके प्रति लापरवाह होती जा रही है। और यह भी उससे नहीं छिपा था कि अब तो सारा समय शेखरू का ध्यान

ही रखने में व्यतीत होता है। जैसे विवादी उसका कुछ है ही नहीं। माला फिर न कुछ कर बैठे, यह बात वह जहाँ भी रहता सोचा करता। कई बार वापस जाने के लिए उसने पूनमी से आज्ञा माँगी किन्तु बिना हाथ अच्छा हुए जाने की अनुमति देने से पूनमी ने मना कर दिया।

इसका तात्पर्य कभी यह न था कि पूनमी उसकी दशा से अनभिज्ञ थी। उसे भी सब कुछ ज्ञात हो चुका था। नारी को नारी ही पहचान सकती है। जानकर भी उसमें कहने का कुछ भी साहस न था। वह सोचती कि उसके कहने का लोग कहीं दूसरा ही कुछ न समझ लें—क्योंकि उसके हृदय में भी तो चोर था। उस चोर के पकड़े जाने की आशंका प्रत्येक समय उसे लगी रहती थी। कहीं माला ही न पकड़ ले कि वह शेखरन को प्यार करती है। वह डरती थी कि कहीं उसकी बातों से ही उसी का सब कुछ न पकड़ा जाय। तब यही विवादी उसके ऊपर कितना रुष्ट होगा? तब वह उसकी दृष्टि से कितना गिर जायगी? अब वह अपनी भूल पर पछताई।

उस समय वह उसे कैसे समझा सकेगी कि उस घटना के समय उसके विचारों ने यह रूप नहीं धारण किया था। पिताजी ने जो कुछ धारणा वह सब देखकर बना ली थी वह यथार्थ में उस समय झूठी थी। किन्तु अब वह स्वयं ही सिहर उठी। इसमें इस बेचारी का क्या दोष? वह भी तो जीव है। हाँ दोषी है तो जिसने इस विचार को उसके हृदय में उत्पन्न किया। पर विवादी पर रुष्ट होने का क्या अधिकार? क्या वह भी माला को प्यार नहीं करता? क्या संसार को नहीं ज्ञात कि माला भी विवादी को प्यार करती है? तो यह समाज वाले केवल उसी को क्यों अपमानित करने पर लगे हुए हैं? क्या उनका सारा न्याय

उसी के लिए ? है उस ग्रभागी को ही सताने में उन्हें ग्रानन्द क्यों ग्राता है ?

इन्हीं विचारों के कारण ग्रब वह बहुत परेशान रहने लगी थी ग्रौर इसी कारण उसका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन खराब होता जा रहा था। शेखरन भी पूनमी का स्वास्थ्य गिरता देख बहुत चिन्तित रहने लगा था। उपचार बराबर हो रहा था किन्तु लाभ नहीं हो रहा था।

कुछ दिन ग्रौर यों ही बीत गये ग्रौर कोई विशेष बात न हुई। माला की उत्सुकता ग्रब बहुत बढ़ चुकी थी। शेखरू के हृदय में यह भय समा गया था कि कदाचित यह कोई नागिन है जो दिन-रात उसे डसने की घात में रहती है।

एक दिन सन्ध्या की बात है। वर्षा ज़ोरों पर थी। विवादी किसी कार्यवश नगर से बाहर गया हुग्रा था। पूनमी ग्रपने कमरे में बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। ग्राज उसका जी ग्रौर दिनों से कुछ ग्रच्छा था। माला भी ग्रपने कमरे में बैठी थी। शेखरन के लौटने का समय निकट ग्रा गया था ग्रौर माला भी उसी की प्रतीक्षा में थी। उसके हाव-भाव को देखकर कोई भी सहज में कह सकता था कि उसने ग्रवश्य ही मन में कुछ ठान ली है।

सीढ़ियों से ग्राती हुई जूते की ध्वनि को सुनकर वह चौकन्नी हो गई। खड़ी होकर एक बार पुनः ग्रपने को दर्पण में देखा ग्रौर ग्रपने शृंगार पर मुस्करा उठी। द्वार के निकट ग्राकर खड़ी हो गई। जूते की ध्वनि ग्रब बिलकुल ही निकट ग्रा चुकी थी। ग्राने वाले को उसने देख लिया था। वह शेखरन ही था। ज्यों ही वह द्वार के निकट ग्राया माला ने स्वयं को द्वार के बाहर गिरा दिया।

गिरने के साथ ही वह चिल्ला उठी। शेखरन ने झपट कर

उसे उठा लिया और उसने कष्ट का अभिनय करते हुए उसके गले में अपनी बाहें डाल दीं। उसकी चीत्कार सुनकर पूनमी ने खिड़की से झांका। माला को उठाये कमरे के भीतर जाते देख वह घबड़ा उठी।—कहीं शेखरू ने बलपूर्वक तो माला को नहीं पकड़ लिया और अब उसे उठाकर कमरे के भीतर क्यों ले जा रहा है? कहीं शेखरन......तो क्या शेखन का ध्यान वह अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी? वह यह जानना चाहती थी कि वह उसको कमरे में क्यों ले गया है किन्तु अपनी निर्बलता के कारण वह स्वयं नहीं जा सकती थी। अपनी असमर्थता पर उसे रोना आ गया और वह वहीं तकिये पर सिर रखकर रो पड़ी।

शेखरू उसको उठाना नहीं चाहता था परन्तु यह देखकर कि पैर में चोट आ जाने के कारण वह खड़ी नहीं हो सकती उसको उठाना ही पड़ा था।

वह उसे पलंग पर लिटाकर जाने लगा तो माला ने रोकते हुए कहा "शेखरन बाबू......।"

शेखरन रुक गया और उसकी ओर घूमकर खड़ा हो गया।

"क्या कुछ क्षण आप मेरे पास नहीं बैठेंगे?"

"क्यों नहीं! पर तनिक डॉक्टर को फोन कर दूं। आपको चोट जो अधिक आई है।"

"आप इसकी चिन्ता न करें!"

"यह कैसे हो सकता है! चिन्ता तो करनी होगी। आप मेरी अतिथि जो हैं!"

"और कुछ नहीं?"

"और मेरी होने वाली भाभी!"

"और इसके अतिरिक्त?"

"यह आप आज कैसी बातें कर रही हैं?"

"जो आज से बहुत पूर्व पूछना चाहती थी !"

"आपका मतलब मैं बिलकुल ही नहीं समझा।"

"मैं जानती हूँ ! समझ जाने पर कहने की क्या आवश्यकता थी। शेखरन बाबू! आज का मेरा गिरना तथा आपका मुझे गोद में उठाना क्या आप सोचते हैं कुछ भी मूल्य नहीं रखता ?··· किन्तु आप सोचने की शक्ति खो बैठे हैं। आपका हृदय पत्थर का बन गया है।"

"जी नहीं मेरा हृदय पत्थर का नहीं मांस का है।"

"यह आपका भ्रम है। यदि मांस का होता तो आज के पूर्व आपने कभी का अनुभव कर लिया होता कि इस घर में कोई ऐसा भी है जो आपको पाने के लिये लालायत रहता है। आपका स्वर सुनने के लिए तड़पता रहता है।"

"धन्यवाद ! मुझे नहीं ज्ञात था कि आपके विचार इतने गिरे हुए हैं।"

इतना कह कर शेखरन द्वार की ओर बढ़ा। माला पलंग से झपट कर द्वार पर जा खड़ी हुई। द्वार को भीतर से बन्दकर मुस्करा पड़ी।

फिर बोली "आना जितना सुगम था अब जाना उतना नहीं शेखरन बाबू ! आज मैंने इस बात का निश्चय कर लिया है कि आपसे साफ़-साफ़ सब कुछ कह दूँगी।"

"पहले किवाड़ तो खोलो नहीं तो कोई क्या कहेगा ?"

"दूसरे के कहने सुनने की मुझे चिन्ता नहीं। आप घबड़ाइये नहीं···मैं कोई ऐसी-वैसी बात करने नहीं जा रही हूँ।"

"परन्तु तुम चाहती क्या हो ?"

"जो एक नारी ऐसी दशा में चाहती है। जिस समय से आपको देखा है मुझे ऐसा जान पड़ने लगा है कि बिना आपके मैं जीवित नहीं रह सकती।"

"होश में तो हैं आप···द्वार खोलिये ?"

"आप इस कमरे से जा सकते हैं किन्तु मेरे हृदय से नहीं। मैं सच कहती हूँ। मैं आपसे प्रेम करने लगी हूँ ! और अब आप के बिना "

"आप इतनी नीच हो सकेंगी स्वप्न में भी मुझे यह आशा न थी···"

"तो अब यह सुन लीजिये कि आपने द्वार के बाहर पग रखा और मैंने चीत्कार किया कि आप इस अकेले कमरे में मेरा अपमान करके जा रहे हैं।"

शेखरन के पग स्वयं रुक गये। द्वार को खोलने के लिए बढ़े हुए हाथ पीछे आ गये। वह अधीर होकर बोला "आखिर तुम मुझसे चाहती क्या हो ?"

वह उसके पैरों पर गिरकर बोली "मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहती मेरे देवता। केवल इतनी ही इच्छा है कि दासी को यदि हृदय में नहीं तो चरणों में ही स्थान दे दो।"

"उठो माला, तुम जीतीं मैं हारा। अब तो खुश होकर द्वार खोलो।"

"पर मैं विश्वास कैसे करूं ?"

"तो क्या मेरी बातों पर तुम्हें विश्वास नहीं ?"

"है क्यों नहीं परन्तु सोचती हूँ कि कहीं वचन देकर आप फिर तो न जायेंगे ?"

"तो फिर तुम्हीं कुछ उपाय सोचो जिससे तुम्हें विश्वास हो सके।"

"तो मैं बताये देती हूँ कि मेरा अपना विचार है कि जब इतनी बेहया बनकर मैंने आपसे बातें की हैं तो इस अवसर से बिना लाभ उठाये जाने देना मूर्खता है···यह लीजिये कागज़ और कलम···"

"यह किस लिये ?"

"सो मैं बताती हूँ ! लिखिये मैं माला को प्यार करता हूँ और सदा लिए अपनी बना रहा हूँ ··"

"मैं यह लिखूँगा नहीं।"

"यही तो मेरा अनुमान था कि आपके वचन पर भरोसा करना मूर्खता है !"

"तुम बहुत ही विचित्र नारी हो !"

"सो तो समय आने पर ज्ञात हो जायगा। इस समय मैंने जो कुछ कहा है उसे लिखना ही होगा नहीं तो यहाँ से आपका बचकर जाना कठिन है।"

शेखरन ने विवश हो लिख दिया और फिर घृणा से उसकी ओर देखा।

माला ने कागज़ को उठाकर पढ़ने के पश्चात् कहा "शेखरन बाबू ! आप सोच रहे होंगे कि इस प्रकार मैं आपको व्याह के बन्धन में जकड़ लूँगी पर ऐसा नहीं होगा। मैं आपसे प्रेम करती हूँ न कि आपकी पूँजी से। यदि आपका प्रेम न पा सकी तो व्याह कौन कहे मैं तो सदा के लिये इस दुनियाँ को ही छोड़ दूँगी। यह भी विश्वास रखिये कि मेरी मृत्यु का आरोप भी आप पर न लगेगा और यदि आपका प्यार पा सकी तो दासी बनकर आपकी सेवा करूँगी। अब आप निःसंकोच जा सकते हैं···किन्तु जाने के पूर्व अपनी चरण रज ले लेने दीजिये।"

इतना कहकर माला ने शेखरन के पग का स्पर्श कर अपने मस्तक से लगा लिया। फिर जाकर द्वार खोल दिया। शेखरन पागल-सा कमरे के बाहर चला गया।

'सच है। नारी, तुझे पहचानना बहुत कठिन है।' इस समय आगे बढ़ते माला स्वयं अपने जाल में फँस गई अभी उसके हृदय

से विवादी की मूर्ति पूर्ण रूप से न मिटी थी। किन्तु अब जबकि वह स्वयं अपने फेंके हुए जाल में फँस गई तो विवादी को अलग करना ही उसने ठीक समझा।

: १४ :

ऊपर वाली घटना को कोई एक सप्ताह बीत चुका था। विवादी का हाथ अब लगभग अच्छा हो चुका था। माला के व्यवहार को देखकर वह मन ही मन कुढ़ा करता था। वह प्रत्येक क्षण यही सोचा करता कि किस प्रकार वह माला को लेकर वापस जा सकेगा। और माला तो बिलकुल यह समझे हुए थी कि अब इस घर से जायगी ही नहीं। अब उसका सारा समय केवल शेखरन के ध्यान में ही बीतता था। उसने स्वयं तो अपनी इस दशा को विवादी पर प्रकट न होने दिया था किन्तु विवादी की चाल-ढाल को देखकर वह समझ गई थी कि उसका भेद विवादी से छिपा नहीं है। अब वह बजाय, इसके कि विवादी का ध्यान रखे बल्कि अवकाश मिलने पर वह यही सोचती कि किसी प्रकार विवादी का कोई अवगुण अपने पिता को लिखकर उसके साथ व्याह करने से इन्कार कर दे।

यौवन जो भी न कर डाले कम है। वह स्वयं ही अपने बनाये गोरख-धन्धे में दिन-प्रति-दिन उलझती जा रही थी। वह अब इतना आगे आ चुकी थी कि परिणाम पर ध्यान देना उसके लिए कठिन हो गया। मनुष्य क्या चाहता है, क्या होता है तथा क्या होगा यह जान सकना उसके वश की बात नहीं। ठेकेदार क्या चाहता था, क्या हुआ ! विवादी से कुछ आशा हुई थी किन्तु

समय ने ऐसा खेल खेला कि अब उसे कदाचित निराशा का मुख देखना पड़े !

किन्तु इन सबसे अधिक हानि में शेखरन था। उसने अपने भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए क्या न सोचा था। वह कठिन-से-कठिन परिश्रम करने को तैयार था किन्तु अब स्थिति कुछ ऐसी बदल गई थी कि वह कुछ करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा था। बिना व्याह किये वह बाहर पढ़ने के लिए नहीं जा सकता और व्याह करने के लिए माला ने पहले ही से उसे जाल में फँसा लिया है।

उस समय माला के कथनानुसार उसने लिखकर दे तो दिया था किन्तु अब उसे अपने किये पर पश्चाताप हो रहा था। लिख कर उसने स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। माला उसे बिलकुल ही नहीं भाती। किन्तु अब उससे छुटकारा पाने का कोई मार्ग भी उसे नहीं मिल रहा था।

माला की सुन्दरता पर कौन बिना मोहित हुए रहेगा ? किन्तु उसने जिस प्रकार से उसके हृदय में घुसने का प्रयास किया था वही घृणित था। अब तो उसकी घृणा तथा पसन्द का प्रश्न ही नहीं उठता था। वह तो माला के जाल में भली-भाँति फंस चुका था। कई बार उसने सोचा कि माला को यहाँ से किसी प्रकार विदा कर दिया जाये। किन्तु इसी बात को भाभी माँ से क्योंकर कहे। कहीं वह उसकी बातों का उल्टा ही मतलब न समझ लें। बात कुछ ऐसी बिगड़ चुकी थी कि उसका बनाना अब उसके लिए कठिन था।

इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे। सब अपने निश्चित पथ पर बढ़े जा रहे थे। कोई किसी पर अपने मन की बात प्रकट नहीं होने देता था। हां एक बात अवश्य हुई कि अब शेखरन बराबर स्वयं को माला से बचाता रहा।

एक दिन दोपहर के समय जबकि पूनमी अपने पलंग पर लेटी हुई थी नौकरानी ने लाकर एक पत्र उसे दिया। उसने पत्र खोला। सारा पत्र पढ़ लेने के पश्चात् उसके अधरों पर मुस्कान खेलने लगी। भविष्य में अपनी आशा पूरी होती जान उसका मुख प्रसन्नता से चमक उठा। यह पत्र सुनीती के पिता का था। उन्होंने सुनीती का व्याह शेखरन के साथ करने से इनकार कर दिया था। कारण में शेखरन के साथ उसका अनुचित सम्बन्ध बताया था।

थोड़ी देर के लिए आने वाली मुसीबत को वह भूल गई। उसका सिर गर्व से ऊपर उठ गया। चलो अच्छा हुआ; साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। अब मेरा शेखरन केवल मेरा बनकर रहेगा। मुझसे अब कोई उसे छीन न सकेगा। भगवान्! अब मुझे शीघ्र अच्छा कर दो। उसे माला का ध्यान आया। ऊँहूँ! वह मेरा क्या कर सकती है?

किन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपनी उस असमर्थता पर रोना आ गया। उसके मन में एक विचार उत्पन्न हुआ। वह जो कुछ करने का विचार कर रही है क्या वह संसार की दृष्टि में ठीक होगा? उसको अपने उस पत्र का ध्यान आया जो उसने आज से दो वर्ष पूर्व विवादी को लिखा था और उसमें अपने ऊपर लगाये पिता के आरोपों को निर्मूल बताया था। तो क्या उनके लगाये आरोपों को कार्यरूप में बदल कर अपने मुख पर सदा के लिए कलंक का टीका लगा ले? तब क्या वह मेरे मुख पर ही मुझे कलंकनी कहने से हिचकिचायेंगे? तो उस क्षण मैं अपना मुख उन्हें क्यों कर दिखा सकूँगी?

वह अपने पथ पर बढ़ते-बढ़ते अब उस चौराहे पर आ पहुँची थी जहाँ पर उसे अपने निश्चित लक्ष्य का मार्ग न मिल रहा था।

उसके जीवन में आज कितने दिनों के पश्चात् हँसने का अवसर आया था किन्तु उसे भी छीनने के लिये विधाता सामने ही खड़ी था। उसकी आँखों में बार-बार वह पत्र खटकने लगा। क्या अच्छा होता यदि उसने वह पत्र न लिखा होता। किन्तु अब उस पर समय नष्ट करने से क्या लाभ ! अब उसके लिए दो ही मार्ग शेष थे। या तो वह उस पत्र का ध्यान रखते हुए अपने हृदय में दहकती इस अग्नि को दबा दे या फिर अपनी तथा शेखरन की निन्दा का ध्यान किये बिना सदा के लिये उसे अपना ले !

काफी समय तक वह इसी भूल भुलइयाँ में उलझी रही। उसे समय का ज्ञान कुछ भी न रहा। अन्त में सोचते-सोचते वह इसी परिणाम पर पहुँची कि हृदय में उठती हुई अग्नि को सदा के लिए दबा देना ही अच्छा है। इसी से उसकी बात बनी रहेगी और वह समाज तथा पिता के समक्ष सिर ऊँचा करके चल सकेगी। इसके अतिरिक्त कोई अन्य चारा भी तो नहीं है। फिर यह भी तो उसे ज्ञात नहीं था कि क्या शेखरन भी उसे उसी की भाँति प्यार करता है या फिर···आज तक तो वह अपने ही विचारों में भस्त थी। शेखरन की ओर से उसे कुछ भी संकेत न मिला था। यदि शेखरन भी उसे उसी प्रकार प्यार करता है······तो फिर वह पत्र और यदि वह उसे उस दृष्टि से नहीं देखता तो पहल करके उसे कितना लज्जित होना पड़ेगा ! और तब वह शेखरन के साथ कैसे रह सकेगी · कुछ भी हो वह अपने विचारों को शेखरन पर प्रकट करने में कभी भी पहल न करेगी।

इतना सोचते-सोचते उसके नेत्रों से दो बूँद आँसू उसके कपोलों पर ढुलक आये। वह सचमुच ही बड़ी अभागी है। उसका जीवन सदा ही नीरस रहा है। उसके विचार उसके पास से निकल भागे। आज उसे सतांशू की याद आ गई। उसकी आँखों के समक्ष वह दृश्य आ गया जब उसने प्रथम बार यौवन में

सतांशू का प्यार पाया था। उसके वे दिन कितने सुखदाई थे। कितनी सुखी थी तब वह ! क्या ज्ञात था कि एक दिन उन्हीं दिनों को स्मरण कर उसे रोना भी होगा। सतांशू की दीन मूर्ति मुस्करा उठी। क्या अब वह सतांशू से एक बार मिल नहीं सकती ? उसका सोया प्रेम आज एक युग के पश्चात् फिर जाग उठा। आँसू दुगने वेग से बहने लगे।

उसे अपनी स्थिति का कुछ भी ज्ञान न था कि विवादी कब खड़ा उसकी ओर देख रहा है। वह उससे आज जाने की आज्ञा लेने आया था किन्तु उसकी यह दशा देखकर वह अपनी बात को भूल गया और उसका दुःख जानने के लिए उत्सुक हो उठा।

उसके निकट बैठकर और आँसुओं को पोंछता हुआ बोला "दीदी क्या जी नहीं अच्छा है ?"

पूनमी कुछ क्षण तक उसे देखती रही और फिर बच्चों की भाँति रोती हुई उसकी गोदी में लुढ़क गई।

"क्या आज कष्ट अधिक है ?"

आँसुओं का वेग कम होते ही पूनमी ने वह पत्र उसकी ओर बढ़ा दिया। पत्र को पढ़कर उसका मुख भी मलीन हो गया। मुख से कोई बात न निकली। कुछ क्षण इसी प्रकार निकल गये।

"अन्त में विवादी फिर बोला "तुम चिन्ता न करो दीदी ! मैं अब सब कुछ ठीक कर दूँगा। शाम की गाड़ी से मैं स्वयं बनारस जाकर उनसे मिलूँगा और उनके मन में जो शंका उत्पन्न हो गई है उसे दूर करके ही लौटूँगा।"

"यदि वह न माने तो ?"

"यह मुझ पर छोड़ दो।"

"तो जाओ भगवान् तुम्हारी सहायता करें।"

कहने को तो पूनमी ने कह दिया किन्तु उसका मन व्याकुल हो उठा। फिर उसमें उथल-पुथल मच गई। भाग्यवश तो वह

अवसर मिलने की आशा हुई थी जबकि वह शेखरन को अपना सके और उसी को वह स्वयं खो रही है। क्या आवश्यकता है विवादी को भेजने की ? उसकी अनुपस्थिति में माला बिलकुल स्वतंत्र हो जायगी। तब उसका शेखरन इधर फँस जायगा। वह अपने शेखरन को ऐसी अवस्था में क्योंकर बचा सकेगी ? यह तो वही हुआ कि आकाश से गिरा और ताड़ पर अटका। बेचारा शेखरन तो उससे फिर भी छिन जायगा। वह चाहे माला को मिले चाहे सुनीती को ! उसके लिए दोनों समान हैं। पर उसके समक्ष तो समस्या थी इन दोनों से बचाकर उसे अपना बनाने की !

अब उसकी विचारधारा दूसरी ओर भटकी। यदि वह विवादी को रोक ही ले तो ? किन्तु उसने यदि इसका कारण जानना चाहा तो ? यही वह बात थी जिसे पूरा करने में वह असमर्थ थी। यही वह शक्ति थी जिसके आगे उसे झुकना पड़ रहा था। यही वह पत्थर की लकीर थी जिसे मिटाना उसके लिए कठिन था। कई बार उसने इस अथाह सागर को पार करने का प्रयास भी किया किन्तु उसके मान-मर्यादा रूपी अस्त्रों ने प्रत्येक बार उसे पीछे ढकेल दिया। उसका मान अभी शेष था, नहीं तो बजाये इस अग्नि में जलती रहने के वह कब की निकल भागी होती। कदाचित उसका जन्म इस अग्नि में जलते रहने के लिए ही हुआ है।

उसे चुप देख विवादी वहाँ से उठकर चला गया। काफी देर पश्चात् जब उसका ध्यान टूटा तो उसे ज्ञात हुआ कि वह तो वहाँ नहीं है। उसे ऐसा लगा कि कदाचित् उसके सिर पर से बहुत बड़ा बोझ उतर गया है। वह करवट बदल कर लेट गई। खिड़की से आती हुई किरणों ने उसके मुख को और भी सुन्दर

बना दिया। भगवान् भास्कर दिन भर की यात्रा समाप्त कर विश्राम के लिए पश्चिम में पेड़ों की झुरमुट में छिपने लगे थे।

: १५ :

प्रात:काल गाड़ी बनारस स्टेशन पर पहुँची। गाड़ी के रुकते ही कुली से सामान उतरवा कर विवादी ने 'प्रतीक्षालय में रखवाया। अन्धेरा काफी होने के कारण वह वहीं बिस्तरा खोलकर आराम से लेट गया! और लेटते ही सो भी गया।

लगभग तीन घंटे विश्राम करने के पश्चात् वह उठा। थकावट दूर हो चुकी थी। शौचादि से निवृत्ति होकर तथा स्नान कर, जाने के लिए, कपड़े बदलकर बाहर निकला। बाहर प्लेटफार्म पर काफी भीड़ थी। लखनऊ से 'देहली एक्सप्रेस' रेंगती हुई आकर खड़ी हो गई। यात्रियों की भीड़ दौड़ी।

जिस स्थान पर वह खड़ा था वहाँ जो डिब्बा आकर रुका उसी में से सुनीती बाहर निकली। उसकी दृष्टि विवादी पर पड़ गई। विवादी भी उसी को देख रहा था। दोनों के अधरों पर मुस्कान फैल गई। दोनों हाथ जोड़े एक-दूसरे के निकट आ पहुँचे। सुनीती के अधर कुछ कहने के लिए हिले किन्तु दूसरे ही क्षण नेत्रों में आँसू छलकने के कारण वह कुछ कह न सकी। उसने मुँह दूसरी ओर कर आँसुओं को पोंछ डाला। किन्तु विवादी से यह बात छिपी न रह सकी।

वह बोला "क्षमा करना सुनीती, इतने दिनों तक मैं तुम्हें अपनी सूचना न दे सका।"

"आपने इसकी आवश्यकता ही न समझी। हाँ यह तो बताइये

कि यहाँ आने का कष्ट कैसे किया ?"

"एक आवश्यक कार्यवश यहाँ आना पड़ा है। अब वहीं जाने की तैयारी में था।"

"चलिये, किसी बहाने साक्षात तो हुआ···तो ठहरना मेरे ही यहाँ होगा।"

"परन्तु मेरा वहीं ठहरना आवश्यक है। वहाँ से निबटकर अवश्य आऊँगा।"

"तो क्या इतने दिनों पश्चात् मिलने पर भी मेरी यह छोटी-सी प्रार्थना स्वीकार न होगी ?"

विवादी बड़े असमंजस में पड़ गया। वह जिस कार्यवश यहां आया है उसका शीघ्र होना भी आवश्यक है और सुनीत को निराश न करना भी अति आवश्यक है। एक क्षण में उसकी दृष्टि के समक्ष वह दृश्य आ गये जबकि सुनीती की प्रत्येक बात को मानने के लिए वह सदा ही तैयार रहता था। सुनीती को अपने से अधिक प्यार करता था।

उसको मौन देख सुनीती बोली "क्या सोच रहे हैं ? क्षमा कीजिये मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहती। अवकाश मिलने पर अवश्य ही पधारियेगा···अच्छा नमस्ते।"

इतना कह और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह आगे बढ़ गई। अति शोक से उसके नेत्रों में नेत्रांबु पुनः आ गये जिसे विवादी नहीं देख सका। उसे स्वप्न में भी यह आशा न थी कि विवादी उसकी बात को यों काट देगा।

जब सुनीती प्लेटफार्म से बाहर निकल कर आँखों से ओझल हो गई तो उसे अपनी असभ्यता पर बड़ा शोक हुआ। तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि सुनीती का पता भी तो उसे नहीं ज्ञात है जो दूसरी बार ही बातचीत हो सके। इस विचार के आते ही

वह सुनीती के पीछे झपट पड़ा। सुनीती तांगे में सामान रखवा रही थी। उदास मन से वह उस पर बैठने ही वाली थी कि वह वहाँ पहुँच गया।

पहुँचते ही बोला "ठहरो सुनीती में भी चलता हूँ।" इतना कह वह सामान लाने के लिए चल पड़ा।

सुनीती का उतरा मुख प्रसन्नता से चमक उठा। विवादी तुरन्त ही कुली के साथ सामान लिए हुए लौट आया। सामान को रखवा कर और कुली को पैसे देकर वह भी उसकी बगल में ताँगे पर बैठ गया। ताँगा चल पड़ा।

सुनीती आज इस समय विवादी को अपने इतने निकट पाकर फूली नहीं समा रही थी। ताँगा आगे भाग रहा था किन्तु उसके विचार उसको पीछे लिये जा रहे थे। वह अपने विचारों में खो गई। उसे मार्ग का कुछ भी ज्ञान न हुआ। हाँ कभी-कभी सड़क पर ऊँचा-नीचा आ जाने के कारण ताँगे के साथ वह भी हिल उठती थी। इसी प्रकार न जाने कितने दिन उन्होंने लखनऊ में व्यतीत किये थे। बिना एक-दूसरे को देखे उन्हें चैन न पड़ता था। किसी प्रकार की रुकावट न होने पर भी विधाता ने एक दिन उन्हें दूर कर ही दिया था और आज—आज वह दोनों फिर एक साथ बैठे हुए जा रहे हैं। उसने मुस्करा कर विवादी पर एक दृष्टि डाली। उसे विचार आया कि कुछ भी हो इस बार विवादी को अपने से दूर न जाने देगी।

ताँगा बँगले की बरसाती में जाकर रुक गया। सुनीती तुरन्त उतर पड़ी। साथ ही विवादी ने भी उतर कर उसके साथ कमरे में प्रवेश किया। नौकर को सामान लाने का आदेश देकर वह विवादी को अतिथि-गृह में ले जाकर बोली "आप आराम से बैठिये मैं अभी आई।"

इतना कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह

वहाँ से चली गई। थोड़ी देर में नौकर उसका सामान लाकर रख गया फिर सुनीती भी आ गई। उसे देख विवादी ने तुरन्त समझ लिया कि सुनीती अवश्य ही चाय का प्रबन्ध करने गई थी। क्योंकि इस इतनी देरी में उसने कपड़े नहीं बदले।

पास आकर मुस्कराती हुई बोली "मुँह इत्यादि धो लीजिए चाय आ रही है।"

"मैं तो प्रतीक्षालय में ही सब कुछ समाप्त कर आया हूँ।"

"चलो यह भी अच्छा हुआ। अब अधिक समय तक आपको यहाँ न रुकना होगा। चाय पी लीजिये 'कार' तैयार है। ड्राइवर आपको पहुँचा देगा.. "

इतना कहते-कहते उसके स्वर काँप उठे।

विवादी से यह बात छिपी न रही। वह बात बदलते हुए बोला "किन्तु सुनीती, तुम्हारे पिता जी कहाँ हैं। अब यदि आ ही गया हूँ तो उनके भी दर्शन कर लूँ।"

"इस समय तो उनसे न मिल सकेंगे।"

"क्यों अभी क्या हुआ ? क्या वे चाय पर हमारा साथ न देंगे ?"

"इस समय तो प्रतिदिन की भाँति टहलने चले गये हैं।"

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। नौकर मेज़ पर चाय रखकर चला गया। सुनीती ने चाय बनाकर एक 'कप' उसकी ओर बढ़ा दिया और एक स्वयं अपने सामने रख लिया। कुछ समय यों ही और बीत गये। [सुनीती पीने के लिए कहना भूल गई और विवादी पीना भूल गया। दोनों अपने ही में खोये रहे।

"अन्त में निस्तब्धता भंग करता हुआ विवादी बोला "सुनीती मैं अपने किये पर बड़ा लज्जित हूँ।"

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझी ?"

"क्या तुम एक बार मुझे क्षमा नहीं करोगी ?"

"किन्तु कुछ बात तो मालूम हो ! किस बात की क्षमा माँग रहे हैं ?"

'तो क्या यह भी बताना..."

वह अभी यही इतना कहने पाया था कि सुनीती के पिता जगदेवा ने सतांशू के साथ कमरे में प्रवेश किया। सुनीती को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि निश्चित समय के पूर्व ही वह लौट आई थी। किन्तु इस प्रसन्नता से अधिक आश्चर्य उन्हें इस समय विवादी को देखकर हो रहा था। अभी तक सतांशू ने विवादी की ओर ध्यान न दिया था।

कुछ क्षण तक किसी के मुख से कोई भी बात न निकली। विवादी की ओर ध्यान जाते ही सतांशू चौंक पड़ा और फिर मुस्कराता हुआ आगे बढ़कर उससे चिपट गया। आज कितने दिनों के पश्चात् दोनों मित्र मिले थे। जगदेवा इस मिलन को देखकर और भी आश्चर्य में पड़ गये।

वह मुस्कराते हुए बोले "तब तो मैं ही अपरिचित बन गया !"

"सुनीती ने मुस्करा कर कहा "नहीं पिता जी परिचय पाने पर आप भी अपरिचित नहीं रहेंगे ! आपका शुभ नाम विवादी है। आप भी कालेज में मेरे सहपाठी थे। और आप हमारे..."

उसकी बात पूरी होने के पूर्व ही विवादी ने उनको नमस्ते किया। नमस्ते का उत्तर देकर बैठने का संकेत करते हुए स्वयं भी बैठ गये।

"फिर हँस कर बोले "आज की सुबह सचमुच ही शुभ संदेश लाई है ?"

सतांशू बोला "इसमें क्या शंका ?"

विवादी भी मुस्करा कर सुनीती को देखकर बोला "सचमुच आज की उषा बड़ी ही शुभ है तभी तो वर्षों के बिछड़े आज मिल गये !"

इस पर ठहाका मारकर सब हँस पड़े ।

चाय पीते समय कोई विशेष बात न हुई। इसका तात्पर्य यह न था कि उनके पास बात करने को ही कुछ न था या वे इच्छुक ही न थे। बल्कि समस्या यह थी कि सब अपनी-अपनी बात अब करना चाहते थे किन्तु सुनीती के पता की उपस्थिति में वे सब चुप थे। उन्होंने ही स्वय समय काटने के लिए इधर-उधर से कई बातें आरम्भ कीं किन्तु दो ही तीन बातों में सब बातें समाप्त हो जाती थीं। अन्त में उन्हें स्थिति का कुछ ज्ञान हुआ। बच्चों के बीच में बूढ़ों का क्या काम। उनको मन-ही-मन बड़ी लज्जा आई। और तब वह उन्हें स्वतंत्र छोड़कर दूसरे कमरे में चले गये।

उनके जाते ही तीनों ने एक-दूसरे को देखा और मुस्करा उठे। सतांशू जो पूनमी का समाचार जानने के लिए अधीर हो रहा था बोला "विवादी शेष घर के लोग कैसे हैं ?"

"और हाँ तुम तो ऐसे अदृश्य हुए जैसे......"

"................"

"गदहे के सिर से सींग ! यही न।"

इस पर तीनों हँस पड़े।

सतांशू ने सिर नीचे करके कहा "क्या तुमको नहीं मालूम ?"

"तुम मेरा मतलब नहीं समझे सतांशू ! जानी हुई बातों को जानने के लिए मैं थोड़े ही पूछ रहा हूँ। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि तुम उस दिन को न जाने कहाँ जा छिपे कि आज मिले।"

"तो किस हृदय से वहाँ फिर आता ?"

"दोस्त ! ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली का नाम है—मुर्दा दिल

क्या खाक जिया करते हैं ! समझे ! हँसना सीखो रोना तो सबको आता है !"

इनको बात करता देख सुनीती वस्त्र बदलने चली गई।

विवादी ने आगे कहा "सतांशू तुम्हें कदाचित दीदी की दीन अवस्था का ज्ञान नहीं है..."

"क्यों क्या हुआ ?"

"कहना तो दूर रहा किन्तु उस स्थिति को सोचकर ही मेरा हृदय फटा जा रहा है।"

"बात तो बताओ सब कुशल तो है ?"

"अब तो सब कुशल-ही-कुशल है। दीदी का भविष्य सदा ही जब-जब उन्होंने उसमें खुशी पाने की आशा की, उनसे दूर भागता रहा। तुम्हें चाहा पिता जी बीच में आ गये, वह तुम्हें न पा सकीं। उनकी मान-मर्यादा के लिए उन्होंने उनकी आज्ञाओं का उल्लंघन न किया किन्तु भविष्य फिर भी भाग खड़ा हुआ। भाँवर पड़ते ही विधवा हो गईं। अपने पराये सब ने उन्हें मनहूस घोषित कर दिया। अपने को असहाय पाकर दीदी अपने देवर के साथ ससुराल चली गईं। देवर भी वह कि जिसके विचारों पर सारी दुनियाँ का बलिदान दे दिया जाय तो कम है। वह दीदी को माँ समझते हैं। कहते हैं भाभी माँ के तुल्य होती है इसीलिए वह दीदी को भाभी माँ कहते हैं। किन्तु समाज फिर भी उनके पीछे पड़ा हुआ है। दीदी ने यहीं बनारस में उनका ब्याह ठीक किया किन्तु सब कुछ ठीक हो जाने के पश्चात् भी लड़की वालों ने ब्याह से इन्कार कर दिया। दीदी पर आरोप लगाया है कि देवर के साथ उनका अनुचित सम्बन्ध है..."

यहाँ तक तो सतांशू सब कुछ सुनता रहा और कुछ न बोला। पूनमी के ऊपर आये हुए दुर्भाग्य का एक-एक आघात उसे असह-

नीय प्रतीत हो रहा था। उसके हृदय से अभी तक पूनमी का प्रेम नहीं गया था। और यही कारण था कि न तो उसने किसी दूसरी को प्यार करने का अवसर दिया और न व्याह ही किया। वह अपना सारा जीवन यों ही विता देना चाहता था किन्तु आज पूनमी की दशा का ज्ञान होते ही एक बार पाने की आशा उसके हृदय में पुनः उमड़ आई। कदाचित विधाता ने पूनमी को उसी के लिए बनाया है, नहीं तो वह पूनमी के साथ यह खेल न खेलती तथा न आज विवादी के साथ ही साक्षात् कराती। उसके भी खेल निराले हैं। मुझे उसका संदेश मिल गया। मैं अपना कर्त्तव्य समझ गया हूँ। पूनमी के मस्तक पर लगे विधवा के धब्बे को मैं पोंछ दूँगा। मैं समाज के नियमों को बदलकर पूनमी को मुस्कराने का अवसर दूँगा ! भगवान् तुम धन्य हो !

उसने विवादी की ओर देखकर कहा 'तुम चिन्ता न करो मित्र ! मैं पूनमी पर लगाये गये आरोपों को मिथ्या प्रमाणित कर दूँगा। उनको मुझसे अधिक कौन जान सकता है !"

उसकी बात का अर्थ न समझ कर विवादी बोला "पर दीदी पर लगाया गया आरोप उसी समय मिट सकता है कि यह टूटा हुआ व्याह होकर रहे जिससे लड़की वालों को जिसने यह सूचना दी है मुँह की खानी पड़े।"

यह दोनों बातों में इतने उलझे हुए थे कि इनको पता ही न चला कि सुनीती कब से खड़ी उनकी बातें सुन रही है। उसने पूनमी के बारे में भी सुना और किस बात के कारण उनके देवर का व्याह रुक गया है और साथ यह भी जान लिया है कि वह लोग यहीं कहीं बनारस में रहते हैं। ऐसी ही बात तो उसके सामने भी आई है तभी तो पिता जी ने पत्र लिखकर व्याह से ना कर दी है। उसकी शंका बढ़ने लगी। कहीं विवादी मेरे ही

पिता के पास तो नहीं आया है ? और यदि ऐसा है तो···उसकी उत्सुकता बढ़ने लगी। क्या विवादी यह जानकर भी कि मैं ही वह लड़की हूँ ब्याह को जोड़ने का प्रयास करेगा ?

इधर यह तो अपने में खोई हुई थी और उधर सतांशू बोला "तुम इसकी चिन्ता न करो विवादी—तुम्हारे साथ मैं चलूँगा और उन लोगों को मनाने का प्रयास करूँगा।"

"तब तो और भी अच्छा होगा। एक से दो अच्छे होते हैं।"

जिस अवसर की उसे आशंका थी अब उसी को और भी निकट आ गया जान उसका हृदय और भी ज़ोर से धड़कने लगा। वह भयभीत थी सो बात नहीं थी बल्कि वह यह सोच रही थी कि यदि उसका विचार सत्य है तो इस स्थिति से परिचित होने पर विवादी की क्या दशा होगी ? तो क्या तब भी वह इसी उत्साह के साथ टूटे हुए ब्याह को जोड़ने का प्रयास करेगा ? क्या तब भी वह मुझे दूसरे को सौंपने का प्रयत्न करेगा ? हे भगवान् ! यह कैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है !

क्या वह विवादी से यह बात बनाकर कह दे कि उसी के लिए उसने स्वयं इस ब्याह से इन्कार कर दिया है। तब कहीं वह यह न कहे कि इन्कार तो यों भी किया जा सकता था। किसी अबला पर चरित्रहीन का आरोप लगाकर ऐसा करना कहाँ तक ठीक है ? तब वह क्या उत्तर देगी ? यदि वह उस बात को केवल उसी से ब्याह के लिये लिखने का बहाना करे तो भी और यदि उस बात को सच बता दे तो क्या वह उससे बिना घृणा किये रहेगा ? दोनों ओर से वह बिना घृणित हुए न रह सकेगी !

उसे वह दृश्य स्मरण हो आया जब उसने इस ब्याह के लिए पिता से हाँ की थी। यदि वह पहले ही निश्चय पर दृढ़ रहती

तो आज उसे इस स्थिति का सामना न करना पड़ता। किन्तु वह दृढ़ भी कैसे रह सकती थी। पिता की बातों ने, उनके सम्मान ने तथा कुल पर लग जाने वाले कलंक से कुलको बचाने के लिए ही तो उसे हाँ करनी पड़ी थी। उसका परिणाम क्या हुआ—उधर वह ब्याह रुका और इधर विवादी को भी पाने की आशा जाती रही ! भगवान् ! क्यों तुम इस अबला के जीवन से खेल रहे हो ? जब मुझसे हाँ करवा ही लिया था तो क्या यही एक घर सम्बन्ध जोड़ने को रह गया था ? यहाँ तक भी उसका कुछ न बिगड़ा था। इस सम्बन्ध का टूट जाना ही अच्छा था। किन्तु विवादी से मिलाप क्या किसी और उपाय से न हो सकता था ? और तब तो वह अवश्य ही विवादी के समक्ष मुँह उठाकर खड़ी हो सकती थी। अपने प्यार की भिक्षा माँग सकती थी। तब वह अवश्य ही उसको अपने हृदय मन्दिर की रानी बना लेता। और तब उसका नीरस जीवन नीरस न रहता।

उसके विचारों का प्रवाह फिर थम गया। इतना आगे भागने से क्या लाभ ? इस क्षण तो समस्या यह है कि स्थिति को संभाला कैसे जाये ? क्यों न वह स्वयं को इन सारी बातों से अनभिज्ञ बताये ? किन्तु नहीं यह भी ठीक न होगा। उसकी आँखों के समक्ष वह दृश्य आ गया जब कि पूनमी और शेखरन उसको देखने के लिए आये थे। उसकी ओर से तनिक-सा ही आभास पाने पर तो पूनमी ने उसको कगन पहना दिया था। वह उसके स्मरण-मात्र से ही काँप उठी। उसकी दृष्टि अपनी कलाई पर उसी कंगन पर जम गई। उसके दोनों किनारों पर बने साँपों के मुख मानो उसे काटने को दौड़ने लगे। उसके मुख से चीत्कार निकलते-निकलते रह गई।

उसने देखा विवादी तथा सतांशू अभी तक बातें कर रहे हैं। उसके विचारों ने दूसरी उड़ान भरी। यदि पूनमी ने उसको देख

आने की और पसन्द करने की सारी बातें उससे कह दी हों तो वह किस प्रकार स्वयं को इन सारी बातों से अनभिज्ञ बतायेगी। उसकी उड़ान के समक्ष एक पहाड़ आ गया। वह स्थिर हो गई। उसके अधरों पर मुस्कान फैल गई उसका मुरझाया मुख फिर से खिल उठा। यह सब सोचने से क्या लाभ ? अभी तो यह विचार ही शंकापूर्ण है कि विवादी मेरे ही वाले विवाह के बारे में बात करने आया है और फिर उस स्थिति के आने पर वह क्या करता है ? तुम धन्य हो भगवन् ! किसी को असहाय देख तुम अवश्य उसकी सहायता करते हो !

वह इसी विचार में खोई हुई मुस्करा रही थी। उसे नहीं ज्ञात हुआ कि कब से विवादी और सतांशू उसके निकट खड़े उसकी स्थिति पर मुस्करा रहे हैं। दोनों बात समाप्त कर चलने के लिए तैयार होकर खड़े ही हुए थे कि उनकी दृष्टि सुनीती पर पड़ी। विवादी ने उसको पुकारा। उत्तर न मिला तो उठ कर उसके निकट गया। उन्होंने समझा कि शायद उसने सुना नहीं है इसीलिए फिर पुकारा। फिर भी उत्तर न मिला तो कुछ क्षण तक वह भी मुस्कराते रहे।

अन्त में विवादी ने उसे हिलाते हुए कहा "क्या सोच रही हो सुनीती ?"

"जी ! कुछ नहीं !"

"वह तो मैं देख रहा था कि बिना बात के ही तुम पागलों की तरह आपही हँस रही थी···अच्छा नो अब मैं जिस कार्य के लिए आया था वहीं जा रहा हूँ।"

"तो कार लेते जाइये···"

"इसकी क्या आवश्यकता ! यों ही घूमता हुआ चला जाऊँगा।"

"तो क्या हुआ कार भी आपको घुमाकर लायेगी। वैसे खोजने में आपको कठिनाई होगी। मेरा ड्रायवर यहाँ का पुराना आदमी है। वह सब स्थान जानता है। आप एक कागज़ पर लिखकर उसे दे दें। वह ठीक स्थान पर आपको पहुँचा देगा।"

"चलो अच्छा ही है।"

तीनों बाहर की ओर चल पड़े। सुनीती को ऐसा लग रहा था कि जैसे उसके पाँव बड़े भारी हो गये हैं। वह पग बड़ी ही कठिनाई से आगे बढ़ा रही थी। उसने जो ड्रायवर को कागज़ पर पता लिखकर देने की बात कही थी सो उसका यही तात्पर्य था कि यदि ड्रायवर उनको लेकर चला जाता और वह लोग दूर जाकर ड्रायवर को स्थान का पता बताते तो असली बात जानने में सुनीती को देर लगती। यह बात उसके लिए असहनीय थी क्योंकि उसकी व्याकुलता प्रति क्षण बढ़ती जा रही थी। वह कब तक परिणाम जानने की प्रतीक्षा करती। यही सोचकर उसने ऐसा कहा था कि चलने के पूर्व ड्रायवर को लिखा हुआ पता मिलने पर उसे शीघ्र की स्थिति का ज्ञान हो जायगा।

ज्यों ही 'कार' दिखाई पड़ी उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई। उसके हाथों से पसीना छूटने लगा। ड्रायवर ने 'कार' का द्वार खोल दिया और दोनों बैठ गये।

विवादी ने ड्रायवर को पता देते हुए कहा 'यहीं चलना है।"

ड्रायवर ने पता पढ़कर मुस्कराते हुए सुनीती की ओर देखा। सुनीती को समझने में कठिनाई न हुई कि इस मुस्कान के पीछे क्या छिपा है। पत्र को लेते समय उसके हाथ काँप उठे।

ड्रायवर ने द्वार खोलते हुए कहा "आपने अच्छा मज़ाक किया बाबू जी! जिसके यहाँ आपको जाना है वह तो यही घर है!"

विवादी ने चौंककर कहा "क्या यही है ?"

इतना कहते-कहते उसके नेत्र सुनीती की ओर घूम गये। सुनीती के हाथों से पत्र छूटकर गिर पड़ा और वह रोती हुई भीतर भाग गई।

: १६ :

विवादी को स्थिति समझने में देर न लगी। सतांशू को इस घटना पर बड़ा आश्चर्य हुआ। पुस्तक में ऐसी बातें वह कई बार पढ़ चुका था, कई बार सिनेमा में देख चुका था परन्तु प्रत्यक्ष देखने का यह प्रथम ही अवसर था। वह विवादी तथा सुनीती के पुराने सम्बन्ध के बारे में जानता था। अतः इस दृश्य का अन्त समझने में उसे देर न लगी।

विवादी भीतर सुनीती के पीछे झपटा। किन्तु दो ही पग रखते ही उसकी गति शान्त हो गई। वह रुक गया। घूमकर उसने वह पत्र उठा लिया। उसे ऐसा लगा कि पत्र में आने वाला प्रत्येक अक्षर उस पर व्यंग से हँस रहा है। उसने उस पत्र पकड़े हाथ को शीघ्रता से जेब में छोड़ दिया। और पत्र को वहीं छोड़ हाथ को निकाल लिया।

सतांशू से उसकी यह दशा जो एक क्षण में ही हो गई थी छिपी न रह सकी। उसने आगे बढ़कर विवादी के कन्धे पर हाथ रख दिया। दोनों के नेत्र मिले। मित्र ने मित्र की मूक भाषा को जान लिया। विवादी उसके संकेत पर अपने कमरे की ओर चला। कमरे में पहुँच कर दोनों एक सोफे पर बैठ गये।

कुछ क्षण निस्तब्धता यों ही छाई रही। कोई कुछ न बोला। विवादी सोच रहा था कि वह अब क्या करे और सतांशू सोच

रहा था कि उसको किस प्रकार सान्त्वना दी जाय। वह विवादी के हृदय में उठने वाली ज्वाला का अनुभव कर रहा था। और विवादी अपने में जैसे खो सा गया था। उसको इस समय वह वचन काँटे की भाँति चुभ रहा था जो उसने यहाँ आने के पूव पूनमी को दिया था। अव वह उसको किस प्रकार पूरा कर सकेगा ? वह लाख अपने पिछले दिनों को भूल जाने का प्रयास करे किन्तु सुनीती का भुलाना उसके लिए असम्भव था। यह वही सुनीती है जिसे एक दिन वह अपने से अधिक प्यार करता था। जो कभी-कभी याद आकर उसको व्याकुल कर देती थी।

हाँ माला ने कुछ दिनों के लिए उसे अपनी ओर अवश्य आकृष्ट कर लिया था। उसकी सेवाओं के भार से दवकर वह अवश्य उसको अपनाने के लिए तय्यार हो गया था फिर भी उसे प्यार नहीं करता था। परन्तु अव तो वह उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगा था। उसे लगा कि माला जिस कीचड़ में गिर पड़ी थी वहाँ से उसे निकालना कठिन है !

क्यों न वह फिर सुनीती को अपनी वनाने का प्रयास करे। किन्तु वह वचन जो उसने पूनमी को दिया था क्योंकर पूरा होगा। उसके समक्ष अब दो समस्याएँ थीं या तो वचन पूरा करने के लिए जिस कार्य को आया उसे पूरा करे या फिर वचन को भूलकर सुनीती को अपने लिए माँग ले।

उधर सुनीती अपने पलंग पर लेटी सिसक रही थी। उसको जो आशंका थी वही हुआ। अब वह किस मुख से विवादी से बात करेगी ! उस दिन उसे आज की भाँति दुःख न हुआ था जबकि विवादी के घर छोड़ने का समाचार उसे उसकी माँ द्वारा मिला था। उस दिन वह इतनी वेबस न हुई थी जितनी आज हो गई है। उस दिन तो खो गये उस विवादी को फिर से पाने

की आशा थी किन्तु आज तो वह पा गये विवादी को फिर से सदा के लिए खो देगी। आज वह अपने विश्वासघाती भाग्य पर ज़ोर से रोना चाहती थी। किन्तु न जाने क्यों उसका स्वर भीतर ही भीतर घुटा जा रहा था। इन सब बातों का ज्ञान अभी तक सुनीती के पिता को न हुआ था। वह अपने कमरे में बैठे समाचार-पत्र देखने में लीन थे।

विवादी और सतांशू को चुप बैठे काफी देर हो चुकी थी। सतांशू ने बिगड़ी को बनाने के लिए अपने मस्तिष्क पर काफी ज़ोर दिया किन्तु वह किसी परिणाम पर न पहुँचा। अन्त में जब उस निस्तब्धता से वह ऊब गया तो बोला "विवादी! ······ विवादी ·"

विवादी ने चौंककर उसकी ओर देखा।

"क्या सोच रहे हो?"

"सुनकर क्या करोगे?"

"कदाचित् कुछ सहायता······"

"नहीं सतांशू, इस काम में मेरी सहायता कोई भी न कर सकेगा!"

"इस प्रकार घबड़ाने से तो काम न बनेगा!"

"अवसर ही घबड़ाने वाला आ गया है।"

"तो बताने में ही क्या हिचक है? मित्र तो मित्र के काम आता ही है!"

"सो बात नहीं सतांशू! सुनकर तुम भी परेशानी में पड़ जाओगे।"

"इसकी चिन्ता तुम न करो। तुम तो केवल इस अपनी परेशानी का कारण मुझे बताओ।"

"तुम से माला के बारे में तो बता ही चुका हूँ। तुम जान ही चुके हो कि मैं उसकी सेवाओं से कितना दबा हुआ हूँ। तुम यह

भी जान चुके हो कि मैं स्वयं ही उसे उसके पिता से माँग चुका हूँ। दूसरी बात मैं दीदी को वचन देकर आया हूँ कि मैं लड़की वालों को मनाने में कोई कमी न रखूँगा। किन्तु अब समस्या यह आ खड़ी हुई है कि वह लड़की यही सुनीती है। अब तुमको कदाचित् यह भी स्मरण होगा कि मैं सुनीती को कितना प्यार करता हूँ। इन सब ने मिलकर मेरी समस्या को इतना जटिल बना दिया है कि कुछ भी निश्चय कर पाने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हूँ। चारों ओर से मैं अपने वचनों से बँधा हुआ हूँ। न तो माला को छोड़ने का साहस है, न तो दीदी को दिया हुआ वचन तोड़ सकता हूँ और न सुनीती के पिता से बात करने का साहस अपने में पाता हूँ...... अब तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ..."

पूरी बात सुनकर सतांशू भी घबड़ा उठा। वह कह सकता था कि माला की सेवाओं को अपनी सुनीती के लिए भूल जाओ, दीदी को दिये हुए वचनों को तोड़ दो और सुनीती को स्वयं के लिए माँग लो। या फिर हृदय पर पत्थर रख लो और जो कुछ जैसा हो रहा है होने दो। जिस कार्य के लिए आये हो उसे पूरा करो। जैसा भाग्य में होगा हो जायगा। किन्तु जितना सहज सोचना तथा कह देना है उतना सहज कर डालना नहीं है। कुछ क्षण तक वह योंही सोचता रहा और फिर अनायास उसके अधरों पर मुस्कान खेलने लगी। आशा की एक किरण उसे दिखाई पड़ी। उसे लगा कि वह दोनों योंही परेशान हैं। यह तो ज्ञात ही न हो सका कि सुनीती पत्र देखते ही रोते हुए क्यों भाग खड़ी हुई। यदि वह विवादी के आने का तात्पर्य समझ गई है तब तो पूनमी को दिये हुए वचनों को पूरा करना अति आवश्यक है। और यदि उसके रो कर भागने का कोई अन्य कारण है तो वह माला और पूनमी को दिये हुए वचनों का बलिदान करके सुनीती को अपना ले।

इस प्रकार सोचकर वह विवादी से बोला "पत्र देखते ही रोकर सुनीती के भीतर भागने का कारण क्या तुम जानते हो ?"

"निश्चित रूप से तो नहीं कह सकता पर समझता हूँ कि उसने मेरे आने का अभिप्राय जान लिया है और तभी वह भागी है।"

"ऐसी बातों में अनुमान से काम न लिया करो ! मेरा विचार है कि उसे तुम्हारे आने का कारण ज्ञात हो चुका है, तो जैसा कि तुम भी समझते हो, तो तुम अपनी दीदी को दिया हुआ वचन पूरा करने के लिये ब्याह की बातचीत करना आरम्भ कर दो। और यदि उसको अभी तक ज्ञात नहीं हुआ तो तुम अवश्य ही चुप हो जाओ और ब्याह की बातचीत न आरम्भ करो बल्कि सुनीती को अपने लिए माँगने का प्रयास करो।"

"यह तुम क्या कह रहे हो ? जानते हो दोनों बातों में बिना मेरे ऊपर आक्षेप आये न रहेगा। क्यों न वापस लौट जाऊँ और कह दूँ कि वह लोग मकान बदलकर चले गये हैं। फिर कुछ दिनों के······"

'फिर कुछ दिनों पश्चात् आकर सुनीती से ब्याह कर लो !"

"तुमने ठीक ही समझा !"

"इसका परिणाम भी सोचा है। बात खुलने पर तुम शेखरन, पूनमी, माला, उसके पिता और स्वयं सुनीती की दृष्टि से गिर जाओगे······उस समय······"

"बस रहने दो सतांशू, आगे कुछ न कहो। यहाँ तक तो मैंने सोचा ही न था।"

"घबड़ाने की कोई बात नहीं विवादी ! लाओ वह पत्र मुझे दो। तुम्हारे स्थान पर मैं स्वयं बात करूँगा और बताऊँगा कि यह पत्र मैं लाया हूँ। बात तो मैं उसी क्षण करूँगा यदि सुनीती को ज्ञात हो चुका होगा।"

"लो, जैसी तुम्हारी इच्छा !"

"तो आओ पहले सुनीती से मिल लें।"

सतांशू ने नौकर को बुलाकर सुनीती से मिलने की इच्छा प्रकट की। नौकर चला गया और कुछ ही क्षणों में वहाँ आकर खड़ी हो गई सुनीती। उसका उतरा मुख देखकर विवादी का हृदय भर आया।

विवादी बोला "सुनीती, मेरे आने से यदि तुमको कुछ कष्ट हुआ है तो मैं आज ही···"

"ऐसा क्यों सोच रहे हैं आप ! क्या मेरी ओर से···"

"हाँ कष्ट हो रहा है मुझे !"

"क्या बात है साफ़-साफ़ कहो न !"

"क्या मुझे यह अब बनाना पड़ेगा ?"

सुनीती के नेत्र झुक गये। वह कुछ न बोली। अपनी उपस्थिति व्यर्थ जान सतांशू वहाँ से उठकर चला गया। उसे जाता देख सुनीती के नेत्र विवादी की ओर उठ गये। उसने स्पष्ट देखा कि इस बार सुनीती के नेत्रों में अश्रुकण बाहर निकलने को मचल रहे हैं।

"तो मेरा अनुमान ठीक है।" उसके कन्धे पर हाथ रखता हुआ विवादी बोला "तुमको अवश्य ही मेरे आगमन से कष्ट हुआ है। क्या ही अच्छा था कि यदि तुमसे इस प्रकार मिलाप न हुआ होता···"

"हाँ क्या ही अच्छा था यदि यह मिलाप न हुआ होता ! उस स्थिति में फिर कभी मिल जाने की आशा तो थी किन्तु अब आप वह आशा भी छीनने आये हैं ! मुझे दूसरे के लिए माँगने आये हैं !"

इतना कहते-कहते उसने अपना सिर उसके कन्धे पर रख दिया।

"तो तुम मेरे यहाँ आने का अभिप्राय जान चुकी हो !"

"हाँ जानकर ही तो अब अपने भाग्य पर रो रही हूँ।"

"मैं समझता हूँ सुनीती, मुझे कम दुःख नहीं है किन्तु मैं विवश हो गया हूँ। भाग्य का लिखा कोई नहीं मेट सकता। नहीं तो स्थिति से अज्ञात रहकर आज मैं स्वयं ही अपने भाग्य का निर्णय करने न आता। बात कुछ ऐसी बिगड़ चुकी है कि अब उसका सुधारना कठिन-सा हो गया है।"

"कठिन कुछ भी नहीं है केवल साहस होना चाहिए !"

"ठीक कहती हो सुनीती ! वही साहस तो मुझमें नहीं है। मैं स्वयं ही अपनी गुत्थियों में ऐसा उलझ गया हूँ कि अब उसमें से निकलना असम्भव हो गया है।"

"अब भी समय है।" उसके चरणों को छू कर सुनीती ने कहा "इन चरणों से मुझे दूर न करें।"

"सुनीती, तुम्हें दूर करने का साहस मुझमें नहीं है। भाग्य ने चाल ही कुछ ऐसी चली है..."

"भाग्य ने चाल ही ऐसी चली है कि हम एक हो जायें। तभी हम बिछड़े हुओं को उसने फिर से मिला दिया ... अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। आप पिता जी से अब भी मुझे माँग सकते हैं।"

"यही तो होना असम्भव है।"

"आप इतने निराश क्यों हो रहे हैं ? आप में कहने का साहस न हो तो यह मुझ पर छोड़ दें। पिता जी मेरा कहना अवश्य मानेंगे। आप शायद भूल रहे हैं कि मैं भी आपको उसी प्रकार प्यार करती हूँ। मेरे हृदय में अब भी आपके लिए वही स्थान है। आपके चले जाने पर जब मैं आपको खोजती हुई आपके घर पहुँची, तो उस समय सब कुछ जान कर मुझे जो दुःख

हुआ उसका वर्णन नहीं कर सकती। तब से आपके लिए कितना व्याकुल रही हूँ यह आप नहीं समझ सकते ! आपने मुझे भुला जो दिया है !"

"सुनीती तुम ऐसा न कहो। मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ। किन्तु जिस स्थिति में मैं अपने दिन काट रहा हूँ उसी में रहते हुए अपनों को कष्ट देना नहीं चाहता।"

"तो यों कहो कि अपने नये जीवन के साथ-साथ पुरानी बातों का त्यागना आपने ठीक समझा।"

"अब तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ ?"

"समझाने की आवश्यकता नहीं। आप आज्ञा दीजिए मैं पिता जी को मना लूँगी।"

"सो तो होगा ही सुनीती। अब तो तुम्हीं को अपने पिता जी को मनाना होगा।"

"आप कितने अच्छे हैं !"

"उतना नहीं जितना तुम समझ रही हो। नहीं तो आज मेरी यह दशा न होती। पिता जी मुझे घर से निकाल न देते। जानती हो सुनीती, मैं दीदी को वचन देकर आया हूँ कि उन्हें निष्कलंक प्रमाणित करने के लिए यह ब्याह करा कर रहूँगा। वह दीदी जिन्होंने तुम्हें यह 'कंगन' तुम्हारी हाँ जानने के पश्चात् पहनाया है ! वह दीदी जिनके हृदय को मेरे से अधिक कोई नहीं जानता ! उनको तुम्हारे पिता ने कलंकनी कहकर ब्याह करने से इन्कार कर दिया ! सुनीती तुम्हीं बताओ मैं कैसे सहन कर सकता हूँ। जानती हो इसी शोक में उनकी क्या दशा हो गई है। वह बीमार पड़ गई हैं। उनको देखकर कदाचित तुम भी अब उन्हें न पहचान सको। मैं इस समय प्रत्येक वह कार्य करने को तैयार हूँ जिससे उनका दुःख दूर हो सके। उनका

स्वास्थ्य लौट सके। मैं इस समय उस औषधि को भी लाने से पीछे न रहूँगा जिससे उनका रोग दूर हो सके और मैं उन्हें हँसता हुआ देख सकूँ! मैं नहीं बल्कि एक लाचार भाई जो अपनी बहन को सुखी देख सके। और उस रोग की दवा तुम हो!"

"मैं!"

"हाँ तुम ही वह औषधि हो सुनीती जो एक लाचार भाई की सहायता कर उसकी बहन को जीवन-दान दे सकती हो। सुनीती, तुम इतिहास उठाकर देखो भाई-बहन का सम्बन्ध चिर-काल से अटूट चला आ रहा है। भाई सदा ही बहन के कष्ट को दूर करने में प्रयत्नशील रहा है। और कल जब इतिहास मेरे नाम पर थूकेगा कि एक भाई ने अपने स्वार्थ के लिए बहन के प्यार का आदर न किया तो क्या तुम में उस समय मेरे ऊपर लगाये गये इस कलंक को सहन करने की शक्ति होगी। सुनीती उस अवसर को न आने देने के लिए बलिदान देना होगा।"

"आप यह क्या कह रहे हैं?"

"सुनीती, मैं ठीक ही कह रहा हूँ। हमें अपने प्यार का बलिदान देना ही होगा। पूर्व-जन्म के किसी पाप कर्म के फल-स्वरूप हम इस जन्म में नहीं मिल सकेंगे। बिना इस बलिदान के हमारा उद्धार नहीं हो सकता। मुझको भूलना ही होगा। तुम्हें मेरी सहायता करनी ही होगी जिसमें मैं अपने वचन को पूरा कर सकूँ। तुम्हें मेरे लिए अपने पिताजी को मनाना होगा। मेरे ऊपर विश्वास करो। तुम मुझमें कलंक पा सकती हो किन्तु शेखरन बाबू में तुम्हें खोजने पर भी कलंक न मिलेगा। भला सोचो तो जो अपनी भाभी को माँ का स्थान देते हुए 'भाभी माँ' कहकर पुकारता हो उसके साथ उसकी भाभी माँ का कोई अनुचित सम्बन्ध कैसे हो सकता है!"

सुनीती के नेत्रों से अश्रुकणों की अविरल धारा प्रवाहित हो उठी। उसने विवादी का पग छूकर कहा "मैं आपको आपके आदर्श से न गिरने दूँगी। किन्तु भगवान् से प्रार्थना अवश्य करना कि अगले जन्म में हम एक हों।"

उसे उठाकर विवादी बोला "भगवान्, तुमको सदा सुखी रखें।"

सुनीती जिस मन्द गति से आई थी उसी से वापस लौट गई उसके लौट जाने के पश्चात् विवादी शरीर को ढीला कर कुरसी पर धम से बैठ गया! मानो हारा हुआ जुआरी थककर गिर गया हो। इस सफलता पर यदि कोई अन्य होता तो अवश्य ही अपने को भाग्यशाली समझ कर प्रसन्न होता किन्तु वह अपनी इस सफलता को अपने जीवन की सबसे बड़ी विफलता समझ रहा था। उसने जो कुछ आज पाया है उसके लिए उसे बहुत कुछ देना पड़ रहा था।

कुछ देर पश्चात् जब उसका ध्यान ठिकाने आया तो उसे ज्ञात हुआ कि वह तो पसीने से बिलकुल भीग गया है। उठकर उसने पंखे का बटन दबा दिया। दूसरे ही क्षण पंखा अपनी पूरी गति से घनघनाने लगा। कुरसी पर बैठकर उसने कमीज के सारे बटन खोल दिये। उसे ऐसा लगा कि जैसे पसीने के साथ-साथ उसकी परेशानी भी सूख रही है। उसके मुख की मलीनता भी धीरे-धीरे कम हो रही है। इतने में सतांशू भी मुस्कराता हुआ आकर कुरसी पर बैठ गया।

आते ही बोला "सुनीती के पिता को मनाने में नाकों चने चबाने पड़े। अन्त में वह मान ही गये।"

"सच!"

"हाँ, किन्तु ब्याह के लिए हाँ करना अब सुनीती के ऊपर है।"

"उसको तो मैंने मना लिया है !"

"सच, तब तो काम बन गया।"

"मित्र तुम्हारे इस उपकार का बदला मैं आजीवन न चुका सकूँगा।"

"घबड़ाओ नहीं, समय आने पर सब कुछ चुकता हो जायगा।"

: १७ :

पूनमी अभी-अभी सोकर उठी थी। उसके नेत्रों से अभी तक आलस्य दूर न हुआ था। इसीलिए वह जागने के पश्चात् भी पलंग पर लेटी हुई थी। उसके नेत्र लाल थे, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रात्रि में ठीक से सोई नहीं है। मन्द-मन्द वायु अपनी मदभरी गति से चल रही थी। ऐसे ही प्राणी इस समय जाग गये थे जिनके हृदय में शान्ति न थी। बेचारी पूनमी भी उनमें से एक थी।

उसके हृदय में शान्ति सदा के लिए लुप्त हो गई थी। कुछ तो शारीरिक क्लेश और कुछ मानसिक व्यथा, बेचारी दोनों के बीच पिसती जा रही थी। उसकी पीड़ा को पहचानने में कोई भी प्रयत्नशील नहीं था। आज कुछ दिनों से जब से माला ने इस घर में पदार्पण किया है शेखरन उसकी ओर से काफी लापरवाह होता जा रहा है। उसकी देखभाल तो उसी भाँति हो रही है किन्तु शेखरन अब उसके पास दो ही एक क्षण बैठकर चला जाया करता है। और जब बैठता है तो भी जैसे विवश हो कर। लगता है जैसे अपनी इच्छा से वह कुछ भी नहीं कर रहा है।

इस परिवर्तित दृश्य को देखकर पूनमी की व्याकुलता और भी बढ़ती जा रही थी। घर का वातावरण जैसे बिलकुल ही

नीरस हो गया है। शेखरन के मुख की चमक जैसी वह कुछ दिन पूर्व देखा करती थी अब दिन-प्रति-दिन मलीन होती जा रही थी। इधर पूनमी की व्याकुलता बढ़ रही थी और उधर माला की चेष्टा। माला ही एक ऐसी थी जो प्रत्येक क्षण प्रसन्न रहा करती। उसका हृदय प्रसन्नता से फूला हुआ था। उसकी मादकता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी।

वह अपने बीते हुए दिनों को बिलकुल ही भुला देना चाहती थी। वह सोच रही थी कि यह नया जीवन किस भाँति आरम्भ किया जाय। आरम्भ करने के लिए सब साधन उपलब्ध थे केवल ठिकाने से उनका प्रयोग करना रह गया था। शेखरन को उसने अपनी मुट्ठी में कर लिया था। अपने पिता को मना लेना कुछ कठिन न था। पूनमी की बात ही क्या, वह तो शेखरन के टुकड़ों पर पल रही है। विवादी की बात ? सो उसकी उसे चिन्ता नहीं क्योंकि वह उसका कुछ भी नहीं कर सकता था। वह जो खेल खेल रही थी उसकी अन्तिम चाल शेष रह गई थी। उसके चलते ही यह घर, यह सम्पत्ति तथा स्वयं शेखरन तक उसके हो जाएँगे। उस चाल को चलने के लिए वह एक अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में थी।

यह बात कदापि न थी कि शेखरन पूनमी की ओर से लापरवाह होता जा रहा था। उसे अब भी पूनमी का उतना ही ध्यान था जितना पहले था। किन्तु आजकल वह स्वयं भी बहुत चिन्तित रहने लगा था। जहाँ तक हो सकता था वह घर से बाहर रहने का प्रयत्न किया करता था। वह स्वयं को माला की दृष्टि से बचाता रहता। अतः किसी आवश्यक कार्यवश ही वह घर में आया करता था। घर में आते ही माला उसके पास पहुँच जाया करती थी। और उसे प्रसन्न रखने के लिए शेखरन को

उसके साथ हँसना पड़ता था किन्तु हृदय में वह रोता ही रहता था। पूनमी के पास जाने में वह अपने को असमर्थ पाता था क्योंकि उसका हृदय तो शोक में दुःखी होता था अतः उसमें हँसने की शक्ति कहाँ से आती ?

किन्तु पूनमी इसका उलटा ही कुछ समझ रही थी। उसका विचार था कि वह दिन-प्रति-दिन माला की ओर खिचता जा रहा है। तभी तो वह उससे खूब बातें करता है, हंसता है और साथ में अधिक समय व्यतीत करता है। और मेरे पास, हँसने बोलने को कौन कहे, वह बैठने तक से घबड़ाने लगा है। इसी कारण उसकी मानसिक व्यथा बजाय कम होने के और भी बढ़ती जा रही है। वह बीमारी से कहीं अधिक इस सोच में घुली जा रही थी। रोना था तो केवल अपने पूर्व कर्मों का जिसका फल वह पा रही है।

विधवा तो वह अकेली नहीं हुई है। संसार में न जाने कितनी अभागिनें हैं जो इसी प्रकार दुःख उठा रही हैं। किन्तु उसने अज्ञान में जो कुछ कर डाला है क्या वह सदा ही घृणित समझा जायगा। आज पुनः पुरानी बातें स्मरण होकर रुलाने लगीं। एक अपरिचित के लिए केवल थोड़ी-सी बात के कारण उसे अपना घर नहीं छोड़ना चाहिये था। पिता ने उस समय यदि शोक में दो अपशब्द उसे कह ही दिये थे तो उसे इस प्रकार बुरा मानकर अपने देवर के साथ अकेले घर में रहने के लिए न आना चाहिए था। वह लाख चरित्रवान है परन्तु यह संसार कब ऐसा मानेगा ? उसने ऐसा कर सबको शंका में छोड़ दिया है।

उसका बाल्यकाल समक्ष आ गया ! जिसके अंक में हँस-खेल-कर सुख की घड़ियाँ बिताई थीं। वह संगी साथी स्मरण हुए जिनको उस समय वह अपना समझती थी किन्तु समय ने सबको

उससे छीन लिया। माता और पिता का वह प्यार स्मरण हो आया जिसे पाकर वह उस समय फूली न समाती थी। उनकी झिड़कियाँ भी याद आईं जिनके कारण वह सिसक कर रो उठती थी। और तब उसे उठाकर और अंक में भरकर वह उसे कितना प्यार करते थे।

किन्तु अब तो यह सब कुछ भी न रह गया था। उसने तो स्वयं ही उस प्यार को पाने का द्वार बन्द कर दिया है! उनकी मानता को ठुकरा दिया है! नहीं तो उन्हें उसकी इस दयनीय स्थिति का ज्ञान अवश्य ही हो जाना था और तब वह अवश्य ही आते। कम-से-कम उसके दुःख से दुःखित हुए बिना वह न रहते। माँ अवश्य ही उसे आँसू बहाती हुई अंक में भर लेती। उस समय उसे कितना आनन्द मिलता और तब वह शीघ्र ही अच्छी भी हो जाती।

आज इतनी बड़ी गाथा जो बिना सोचे लिखने योग्य हो गई है उसकी मूल अभिनेत्री वह स्वयं है। उसकी एक छोटी-सी त्रुटि ने बड़े पर्वत का रूप धारण कर लिया था जिस पर समय की सीढ़ी लगाकर वह चढ़ती ही गई किन्तु उसे उसका अन्त न मिला। और अब तो वह इतनी ऊँचाई पर आ पहुँची है कि वहाँ से नीचे उतरना तो दूर रहा बल्कि नीचे देखना भी भय से खाली नहीं है। आगे बढ़ते समय तो उसे सोचने का अवसर ही न मिला था फिर नीचे उतरने के लिए अब छटपटाने से क्या लाभ!

औषधि का समय हो गया था किन्तु अभी तक शेखरन न आया था। आज यह प्रथम ही अवसर था कि वह भी अभी तक दवा पिलाने न आया था। कुछ देर तक तो पूनमी उसकी प्रतीक्षा करती रही उसके पश्चात् उसने स्वयं ही दवा पीने के लिए उठकर प्रयास किया किन्तु शीशी काँपते हाथों से छूटकर

गिर पड़ी। दवा की गंध से सारा कमरा भर गया। वह तकिये के सहारे लेट गई। अपने को आज असहाय जानकर वह रो पड़ी। उसका क्रंदन सुनकर शेखरन जो दूसरे कमरे में बैठा हुआ था भागता हुआ आया।

पास बैठकर बोला "क्या हुआ भाभी माँ ?"

"दवा गिर गई।"

"कैसे ?"

"मैं पीने उठी थी। हाथ से छूटकर गिर पड़ी।"

"तुम पीने क्यों उठीं भाभी माँ ? मैं जो स्वयं समय पर तुम्हें पिलाने आ जाता !"

इस बार पूनमी ने कोई उत्तर न दिया केवल घड़ी की ओर संकेत कर दिया। घड़ी देखकर शेखरन को ज्ञात हुआ कि दवा देने का समय तो कब का बीत चुका है तो वह बड़ा लज्जित हुआ।

"क्षमा करना भाभी माँ, कल से ऐसा अपराध न होगा !"

"छोड़ो इस बात को क्या मैं आशा करूँ कि तुम मेरी एक बात का उत्तर ठीक-ठीक दोगे ?"

"क्या कभी नहीं भी दिया है भाभी माँ !"

"सो बात नहीं। परन्तु आज की बात का एक विशेष महत्त्व है।"

"तुम पूछकर देखो भाभी माँ।"

"आजकल तुम मेरी ओर ठीक से ध्यान नहीं दे रहे हो।"

यह प्रश्न बहुत पहले पूछे जाने की आशंका शेखरन की थी अतः वह चुप रहा।

"तो यदि तुमको मेरा यहाँ रहना अच्छा न लगता हो तो मुझे गंगा के किनारे छोड़ आओ। जीवन शेष होगा तो अच्छी हो जाऊँगी, नहीं तो उन्हीं की गोद में सो जाऊँगी।"

उसका पग छूकर शेखरन बोला "ऐसी बात न कहो भाभी माँ। तुम्हारी ही शुभकामनाओं के प्रताप से तो आज मैं इस शिखर पर पहुँच सका हूँ और अब तुम्हीं वह हाथ मेरे ऊपर से उठा लेना चाहती हो। यदि तुमने ऐसा सोचा या किया तो तुम से पूर्व मैं स्वय अपने जीवन को समाप्त कर दूँगा "

"पर मैं कैसे विश्वास करूँ ! इधर कुछ दिनों से देख रही हूँ कि तुम मेरी ओर से लापरवाह होते जा रहे हो। यहाँ तक कि आज समय पर औषधि भी देने न आये।"

शेखरन का हृदय भर आया। उसका स्वर काँप उठा। वह अधीर होकर बोला "भाभी माँ बार-बार उसी बात को दोहरा कर मुझे और दुःख न पहुँचाओ। तुम सच मानो मैं अपनी ओर से लापरवाही नहीं कर रहा हूँ। स्थिति ही ऐसी आ गई है कि मैं विवश हो गया हूँ मेरा पग किसी की आज्ञा के अनुसार पड़ रहा है। मेरी स्वयं की कुछ सोचने और करने की शक्ति लुप्त हो गई है।"

इतना कहते-कहते वह बच्चों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगा। उसको रोता देख पूनमी भी अधीर हो उठी।

बोली "क्या वह सब मेरे सुनने योग्य नहीं है ?"

"है क्यों नहीं भाभी माँ ! किन्तु अभी समय नहीं आया है।"

उसकी बात पूरी भी न होने पाई थी कि पूनमी को दौरा पड़ गया। उसके हाथ अनायास ही शेखरन के चारों ओर जकड़ गये। शेखरन उससे बिलकुल सट गया। घबड़ाहट में सांस फूलने लगी। वह उन हाथों की पकड़ से बड़ी कठिनता से निकल सका। पूनमी को तकिये के सहारे लिटा दिया। कुछ क्षण में पूनमी का शरीर फिर पहले की भाँति शान्त हो गया। उसे शांत देख शेखरन को समझने में देर न लगी कि दौरा समाप्त हो

चुका है और अब सदा की भाँति यह कुछ देर के लिए सो गई है। किन्तु आज यह बात न थी। वह दौरे के कारण थक कर लेटी हुई थी।

शेखरन जाने के लिए घूम पड़ा। किन्तु सामने माला को खड़ा देख वह ठिठक कर खड़ा हो गया।

माला ने व्यंग भरी मुस्कान के साथ कहा "घबड़ा क्यों गये। जाइये मैं किसी से भी न कहूँगी कि आपने अपनी भाभी माँ को अपने अंक में भर कर प्यार किया है!"

"क्या कह रही हो माला? कम-से-कम भाभी माँ के लिए तो ऐसे अपशब्द न निकालो।"

"तो मैं उनको कब कह रही हूँ!"

"क्या तुम यह नहीं जानती हो कि उनको दौरा पड़ा करता है!"

"जानती हूँ! और साथ ही यह भी जानती हूँ कि दौरे का पड़ना एक ढोंग है। उसकी आड़ में तो उन्होंने आपको प्यार करने का मार्ग खोज लिया है।"

"तुम यहाँ तक नीचे गिर जाओगी मुझे स्वप्न में भी यह आशा न थी!"

"आपको समझने में भूल हुई। नीचे तो मैं उस दिन गिरूँगी जब आपको मेरी आज्ञानुसार अपनी इन भाभी माँ को घर से निकालना होगा।"

"उससे पूर्व मैं स्वयं ही निकल जाऊँगा।"

"आपको निकालने के बारे में तो मैं सोच ही नहीं सकती। किन्तु स्मरण रहे कि आपके हाथ का लिखा वह कागज़ मुझे इस घर की स्वामिनी बना सकता है। अतः मैं आपको सूचित करती हूँ कि इस घर में अब इस प्रकार का प्रेम राग न गूँजने पावे।"

इतना कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा लिए बिना वह चली गई। शेखरन पास पड़ी कुरसी पर धम से बैठ गया। अब उसे पूर्ण आशा हो गई कि उसका भविष्य अन्धकार की ओर बढ़ रहा है। और अब इससे बचे रहना उसके लिये असम्भव है। उसकी नौका अब उस धारा के लपेट में आ गई है कि उसका बचना अब कठिन है।

मनुष्य एकान्त में निस्तब्धता से घिरा हुआ जब स्वयं में खो जाता है तो उसके विचार इधर-उधर भटकने लगते हैं। यही दशा इस समय शेखरन की थी। वह भी स्वयं में खो गया। उसके विचार भी उस समय उसके पास से भाग खड़े हुए।

उसके नेत्रों के समक्ष वह दृश्य आ गया जबकि वह छोटा-सा एक बालक था। उसके माता की मृत्यु उसके जन्म लेते ही हो चुकी थी। घर में पिता तथा एक बड़े भाई के अतिरिक्त कोई न था। पास-पड़ोस का कहना ही क्या! चारों ओर जंगल ही जंगल था। कितनी कठिनता से उसे पिता ने पाला था। वह उस समय जंगल विभाग के कमिश्नर थे। उस समय उनके समक्ष इन दो बच्चों के पालने की कठिनाई थी। उस निर्जन वन में उन्हें कोई आया भी न मिल सकी थी।

दुर्भाग्य कभी अकेले नहीं आता। वह अभी दो ही वर्ष का था कि एक सन्ध्या को उसके पिता को शेर ने मार डाला। अब रह गये इस अथाह जन-समूह में वह और उसके भाई जिनकी आयु उस समय केवल आठ वर्ष की थी।

यहाँ पर पहुँचते-पहुँचते उसका ध्यान किसी खटका से टूट गया। उसने चौंककर इधर-उधर देखा। वायु से खिड़की के परदे फड़फड़ा रहे थे उसने उठकर खिड़की के द्वार भेड़ दिये।

फिर आकर उसी कुरसी पर बैठ गया। फिर विचारों में खो गया।

उसके पिता के पास धन की कमी न थी। किन्तु उस समय वह मिला नहीं। सरकार ने उनकी देखभाल का भार अपने ऊपर ले लिया। बड़े भइया की पढ़ाई भी आरम्भ हो गई। वह पढ़ने में बहुत ही अच्छे थे। वह उसे भी बहुत प्यार करते थे। बिना उसे खिलाये स्वयं उन्होंने खाना कभी न खाया। बिना उसे सुलाये स्वयं कभी न सोये। संक्षेप में वह उसे अपने से अधिक प्यार करते थे।

फिर एक दिन उसने भी पढ़ना आरम्भ किया। और भाई की भाँति वह भी प्रत्येक कक्षा में उत्तीर्ण होता चला गया। उसकी सफलता पर उसके भाई कितने प्रसन्न होते थे! वह उन्हीं के बताये मार्ग पर बढ़ता ही गया। फिर एक दिन उसके भाई भी जंगल विभाग के कमिश्नर हुए। पिता का सारा रुपया उन्हें मिला। फिर घर बसाने के लिए ब्याह निश्चय किया। उस समय उसे कितनी प्रसन्नता हुई थी।

ब्याह हुआ फिर भाँवर पड़ने के पश्चात् ही······इस दृश्य के आते ही उसके नेत्रों से अश्रुधार बह निकली। और वह फूट-फूटकर रोने लगा।

उसका क्रंदन सुनकर पूनमी चौंक पड़ी। रो तो वह भी रही थी किन्तु मन-ही-मन में। अभी कुछ क्षण पूर्व माल के साथ हुई शेखरन की सारी बातें उसने सुन ली थीं। उसी दुःख में दुःखी वह भी अश्रुकण बिखेर रही थी, अब जो शेखरन का रोना सुना तो अपना रोना भूलकर उसके लिए व्याकुल हो उठी।

करवट बदल कर पूछा "क्या बात है! क्यों रो रहे हो?"

शेखरन ने नहीं सुना।

कुछ क्षण रुक कर पूनमी ने तनिक ज़ोर से पूछा "क्यों रो रहे हो ?"

इस बार शेखरन चौंक पड़ा। घूमकर पूनमी की ओर देखा और फिर झपट कर उसके पैर पकड़ कर रोने लगा। दोनों रोने लगे। उस समय उनको देखकर कोई भी बिना रोये नहीं रह सकता था।

पूनमी बोली "रोने से क्या लाभ ? संसार में जीने के लिये साहस चाहिये, यह बात तो तुम्हीं अनेकों बार मुझसे कह चुके हो।"

"हाँ भाभी माँ ! उस समय मुझे ऐसे अवसरों का अनुभव न था। आज तो मैं हताश हो गया हूँ। साहस छोड़ बैठा हूँ। पथ से भटक गया हूँ। कोई भी हाथ पकड़कर ठीक मार्ग पर लगाने वाला नहीं है !"

"घबड़ाओ नहीं ! भगवान् ही तुम्हारी सहायता करेंगे। मैंने माला की सारी बातें सुन......"

"तो भाभी माँ तुमने सारी बातें सुन लीं !"

"हाँ सब कुछ सुन लिया है। उस समय में सदा की भाँति सो न पाई थी।"

"तो तुमने मेरी विवशता का कारण भी जान लिया होगा ?"

"वही जानकर तो अपने भाग्य पर रो रही हूँ। मुझ अभागिन ने तुम्हें भी भाग्यहीन कर दिया है।"

"ऐसा न कहो भाभी माँ ! मेरे लिए ऐसा सोचना और सुनना दोनों पाप हैं। तुम मेरे लिए सदा ही आदरणीय हो। यह बात आज से बहुत पूर्व, जब स्थिति इतनी बिगड़ी न थी, मैं तुमसे कहने वाला था किन्तु यह सोचकर कि अपनी होने वाली भाभी के लिए कदाचित तुम ऐसे अपशब्द न सुन सको। मैं चुप

रहा। मेरी चुप्पी ने उन्हें शेर कर दिया और उन्होंने अपनी चाल में मुझे जकड़ लिया। और अब मेरे लिए उसमें से निकलना असम्भव हो गया है।"

"इसी शक्ति ने तो मेरा मुख भी बन्द कर रखा है। नहीं तो जिस दिन मैंने माला को देखा था उसी समय समझ गई थी कि यह अच्छे आचरण की नहीं है। परन्तु संकोचवश मैं भी विवादी से न कह सकी कि कहीं वह बुरा न मान ले।"

इसी प्रकार दोनों काफी देर तक अपने दुःखों पर आँसू बहाते रहे।

: १८ :

विवादी भी सतांशू के साथ ताँगे से उतर पड़ा। दोनों ने कमरे में प्रवेश किया। विवादी के मुख से मानसिक व्यथा टपक रही थी। ऐसा लगता था कि जैसे उसकी पहले वाली प्रसन्नता कहीं अदृश्य हो गई है। उसकी गति में चंचलता न थी जैसे चलते-चलते थक गया है। उसके नेत्रों में वह तेज़ नहीं था जैसे वह अपनी जीत को भी हार समझ रहा है। वह जैसा गया था उससे कहीं अधिक बदल कर आ गया है। किन्तु सतांशू के मुख पर जो व्याकुलता दृष्टिगोचर हो रही थी वह तो किसी और ही कारण थी। प्रति क्षण वह बढ़ती जा रही थी। पूनमी को देखने के लिए वह विकल था।

आज कितने दिनों पश्चात् वह पूनमी से मिलेगा! अपनी पूनमी से बातें करेगा। उस पूनमी से जिसे अपना कहने का उसे अधिकार था। सदा ही जिसका मनन वह ध्यान में किया करता

था। आज उसी को प्रत्यक्ष देख मोती तुल्य अपन उन दो अश्रु-कणों को जिनकी रक्षा आज इतने दिनों से वह करता आ रहा है उसके चरणों में अर्पित करके पूछेगा "देवी! मुझ से क्या अपराध हुआ था जो सदा के लिए मुझे त्याग दिया। और फिर कभी भूलकर भी यह जानने का कष्ट न किया कि मैं किस अवस्था में हूँ। क्या यही है तुम्हारी दया का भण्डार जहाँ से मुझे केवल असीमित अश्रुकण जिनमें से अपनी असावधानी के कारण यही दो बचा पाया हूँ जो तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं। तुम क्रोधित न होना कि मैंने तुम्हारा प्रसाद लौटा कर तुम्हारा अनादर किया। मैं तो अपने को अनभिज्ञ पाकर ही तुम्हारे यह मोती तुम्हें लौटा रहा हूँ। मैं अब और अधिक दिनों तक इनकी रक्षा नहीं कर सकता। मैं तुम्हारी स्मृति के उस बवण्डर में फँस गया हूँ जहाँ अब इनकी ओर ध्यान देने में मैं असमर्थ हूँ। अब मैं बहुत थक गया हूँ अतः मुझे विश्राम की आवश्यकता है जो मुझे प्रसन्नता प्रदान करे। केवल एक बूँद जो मुझे और भी तुम्हारे निकट कर दे! केवल एक बूँद जो मुझमें वह तेज़ भर दे जिससे तुम मुझे कभी न भूल सको।

विवादी ने उसे सोफा पर बिठा दिया। और बोला "सतांशू तुम यहीं ठहरो मैं अभी आया।"

इतना कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह भीतर की ओर चल पड़ा। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा था उसके पैर डगमगा रहे थे। उसे ऐसा लग रहा था कि वह स्वयं ही अपने नाश की ओर बढ़ रहा है। कभी-कभी उसके पैरों की गति मन्द पड़ जाती वह सोचता 'अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। अब भी मैं सुनीती को पा सकता हूँ। अब भी अपनी खोई हुई प्रसन्नता को पुनः पा सकता हूँ।' किन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचने लगता 'नहीं यह

पाप होगा। भाई-बहन के बीच विश्वासघात होगा !' उसके पग बराबर बढ़ते जा रहे थे। वह इस चाल से आगे बढ़ रहा था जैसे जज अपने निकट सम्बन्धी को दण्ड सुनाने जा रहा हो। अब वह सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर आ पहुँचा था। पूनमी के कमरे के बाहर दो क्षण के लिए रुका। उसका हृदय ज़ोर से धड़क रहा था। दूसरे क्षण किसी अज्ञात शक्ति ने उसे कमरे में ढकेल दिया।

वह जाकर पूनमी के पलंग के निकट खड़ा हो गया। उस समय उसकी दृष्टि दूर आकाश पर उड़ते हुए मेघों पर जमी हुई थी। वह इस समय बिलकुल निश्चल लेटी हुई थी। खिड़की से मन्द वायु कमरे में आ रही थी। कमरे में ऐसी निस्तब्धता छाई हुई थी मानो वहाँ कोई है ही नहीं। कुछ क्षण तक विवादी यों ही खड़ा रहा।

"फिर उसने पुकारा "दीदी !"

कोई उत्तर न मिला तो बैठते हुए बोला "दीदी !"

पूनमी ने चौंक कर उसकी ओर देखा। फिर मुस्करा कर बोली "अरे विवादी कब आये ?"

"दीदी, अभी आ ही रहा हूँ !"

"क्या बात हुई ?"

"वही जो तुम चाहती थीं !"

इस उत्तर को सुनकर उसका हृदय धड़कने लगा। प्रथम क्षण में वह निश्चय न कर सकी कि ऐसा कहने का उसका क्या तात्पर्य है ! कहीं इसने मेरे हृदय का चोर पकड़ तो नहीं लिया ! कहीं वहाँ पर लोगों ने इसे मेरे खिलाफ कुछ कह तो नहीं दिया! यह क्या कह के आया है जो कहता है कि वही हुआ जो मैं चाहती थी।

इसे क्या पता कि मैं क्या चाहती थी। मैंने किसी पर भी अपने विचार प्रकट नहीं होने दिये। इस निष्ठुर जग को कभी सुगन्ध भी न पाने दिया अपने उस फूल की जिसे हृदय में छिपाये हुए हूँ! नभ को चौकन्ना तक होने का अवसर न दिया कि वह जान सके कि मैं कौन-कौन से तारे तोड़ रही हूँ! रात्रि को पहचानने का अवसर ही न दिया कि वह जान सके कि किस दीपक ने मेरा हास चुराया है! मैंने तो अपने प्रियतम का गायन केवल पल भर के लिए पलक मूँद कर गाया था! मैंने अम्बर की ओर देखकर अपने नेत्रों से केवल दो मोती ढुलकाया था! मैंने तो अपने दीपक को पहचान कर उसकी ज्योति केवल तनिक-सी बढ़ा दी थी। मैंने तो केवल हृदय में उससे प्रार्थना की थी कि जब मैं अपना सर्वस्व उस पर चढ़ाऊँ तो वह उन्हें लेने के लिए अपने हृदय-पट को खोल दे! जब सब कुछ मैंने हृदय में चुपचाप किया है तो आज यह विवादी क्यों इतनी दृढ़ता से कह रहा है कि वही हुआ है जो मैं चाहती थी! मैं तो जो कुछ चाहती हूँ वह तो मेरे प्रियतम को भी नहीं ज्ञात है……

"दीदी, क्या सोचने लगीं?"

"कुछ नहीं! तुम्हारी बात कुछ समझ में नहीं आई!"

"मेरा मतलब था कि वह लोग मान गये हैं!"

"वह लोग मान गए?"

"हाँ दीदी, वह लोग मान गये और तुम्हारी ओर से उनका हृदय भी साफ़ हो गया है।"

"सच!"

"हाँ दीदी, यदि भगवान् चाहेंगे तो शेखरन के ब्याह के पश्चात् तुम्हारे ऊपर लगाया हुआ वह कलंक सदा के लिए धुल जायगा।"

"भइया, तुम कितने अच्छे हो!"

"तुम भूलती हो दीदी, ! मैं बहुत बुरा हूँ···अच्छा होता तो ऐसा कभी न करता।"

"रहने दो, मैं जानती हूँ कि अच्छे लोग अपनी अच्छाई अपने मुँह पर सुनना कभी पसन्द नहीं करते। तुमने मुझे संसार में मुख दिखाने योग्य बना दिया।"

"दीदी यह बातें छोड़ो। भगवान् जो करते हैं अच्छा ही करते हैं ! हाँ शेखरन बाबू कहाँ हैं ?"

"पीछे बताऊँगी, पहले तुम कपड़े इत्यादि उतारो।"

"क्या बात है दीदी ?"

"लम्बी कहानी है, समय लगेगा।"

"तो ठीक है, फिर बताना।"

"इतना कहकर जाने लगा। फिर रुक गया और लौट पड़ा उसी कुरसी पर बैठता हुआ बोला "दीदी, मैं वहाँ से एक चीज लाया हूँ।"

"क्या है ?"

"नहीं यों नहीं, तुम स्वयं सोचकर बताओ कि क्या चीज है ?"

"कुछ सोच नहीं पा रही हूँ ! कदाचित भाभी ने कुछ भेजा होगा।"

"नहीं दीदी, उन्होंने तो कुछ भी नहीं दिया। वह तो कभी तुम्हारी ही चीज़ थी जिसे मैं लाया हूँ। अब बताओ ?"

"वहाँ जब गई थी तो हो सकता है आते समय भूल आई हूँगी ! वही होगी।"

"नहीं।"

"तो वह कंगन होगा जो मैं भाभी को पहना कर आई थी।"

"नहीं दीदी, वह भी नहीं।"

पूनमी फिर सोच में पड़ गई किन्तु सतांशू तक न पहुँच सकी क्योंकि उसे अपना कहकर पुनः पाने की आशा उसे न थी। कुछ भी हो। उस तक उसका ध्यान न गया।

"भइया, अब तुम्हीं बताओ।"

"तो वचन दो मुख मीठा कराओगी !"

"वचन की क्या बात !......"

"तो तुम नेत्र बन्द करो और फिर मेरे कहने पर खोलना।"

पूनमी ने नेत्र बन्द कर लिए और विवादी कमरे के बाहर चला गया।

जिस समय विवादी वहाँ बैठा हुआ पूनमी से शेखरन और सुनीती के ब्याह के बारे में बातें कर रहा था उसी समय माला भी कमरे के बाहर छिपी हुई सब कुछ सुनने का प्रयास कर रही थी। उसने शेखरन के ब्याह के बारे में सब कुछ सुन लिया। सुनते ही उसके शरीर में मानो आग लग गई। वह सोचने लगी 'तो मेरी अज्ञानता से लाभ उठाकर ब्याह की तैयारी हो रही है। किन्तु मैं ऐसा न होने दूँगी। मेरे रहते इस घर में मेरा राज्य होगा और अब इसको भी देख लूँगी जो इस घर की मालकिन बनी फिरती है।'

इस प्रकार सोचकर और इन दोनों को बात करता छोड़कर वह सीधी शेखरन के पास पहुँची जो इस समय छत पर बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था। इस पर दृष्टि पड़ते ही शेखरन ने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया। माला कुछ तो पहले ही से जली हुई थी और इस क्षण शेखरन के इस प्रकार से मुँह फेर लेने ने उसके जले पर नमक का काम किया।

वह फुफकारती हुई बोली "तो अब मुझसे इतनी घृणा हो गई है ?"

"मैंने कब कहा......"

"तो क्या तुम कहो तो समझूँ। यह तो योंही बिना कहे प्रकट हो जाती है।"

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं..."

"सब समझ में आजायेंगी। पहले तुम जाओ और अपनी उस कलंकनी भाभी माँ से कहो..."

"बस करो माला ! अब मुझसे नहीं सहन होता।"

"तुम मेरी बात सहन कर सको ऐसी शक्ति स्वयं तुम्हारे वह लेख तुम्हें प्रदान करेंगे जो मुझे लिखकर दिया है। मैं दुनियां के समक्ष चिल्ला-चिल्ला कर कहूँगी कि तुमने अपनी भाभी से जो पाठ सीखा है उसका प्रयोग मुझ दुखिया पर किया और अब उसका परिणाम जानने के लिए बेचारी सुनीती का जीवन नष्ट करने में लगे हुए हो। किन्तु मैं ऐसा कभी न होने दूँगी। मैं तुमसे अपना अधिकार लेकर रहूँगी।"

"इससे तो अच्छा है कि तुम मुझे विष दे दो।"

"मैं ऐसा कर फांसी पर चढ़ने की मूर्खता नहीं कर सकती।"

"मैं तुम्हारे ऊपर आँच न आने दूँगा।"

"परन्तु मैं ऐसा भी न होने दूँगी.. इस समय तुम जाकर अपनी भाभी माँ से कहो कि तुम सुनीती से ब्याह नहीं करोगे।"

विवश हो शेखरन को पूनमी के पास जाना पड़ा। माला फिर आकर कमरे के बाहर छिप गई। पूनमी के निकट पहुँचते ही शेखरन बोला "भाभी माँ मैं सुनीती से ब्याह न करूँगा।"

पूनमी ने जो आँख बन्द किये विवादी की प्रतीक्षा कर रही थी, शेखरन का स्वर सुनकर नेत्र खोल दिए। उसे उसकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

बोली "क्यों ? क्या हुआ ?"

शेखरन ने उंगली से पीछे की ओर संकेत करते हुए कहा "यह न पूछो। बस कह दिया तो नहीं करूँगा।"

"अच्छी बात, तुम्हारी इच्छा। मैं उन्हें मना कर दूँगी।"

इसके पश्चात् शेखरन बिना कुछ कहे वहाँ से चला गया। माला भी उसके पीछे-पीछे चली गई।

पूनमी ने फिर नेत्र बन्द कर लिए। शेखरन की बातों का उस पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। वह उसके संकेत से समझ गई थी कि वह किसी दबाव के कारण ही ऐसा कह रहा है। अतः वह उसके लिए चिन्तित न होकर विवादी की प्रतीक्षा करने लगी। विवादी थोड़ी देर पश्चात् सतांशू को लिए वहाँ पहुँचा। पग-ध्वनि कान में पड़ते ही पूनमी का हृदय धक-धक करने लगा। उसने और ध्यान दिया तो ज्ञात हुआ कि कोई और भी साथ प्रतीत होताहै। और सतांशू वह तो पूनमी को देख कर पहले तो पहचान ही न सका किन्तु विवादी के दिखाने पर वह उसकी दशा देखकर बिना सिसके न रह सका।

क्या यही है उसकी वह पूनमी जिसे देखकर वह प्रसन्नता से फूल उठता था! क्या यही है वह पूनमी जिसे कभी वह प्यार करता था! कितनी बदल गई है आज यह कि उसको पहचानना भी कठिन हो गया है? कहाँ गया उसके मुख का वह तेज जिसे देखकर चाँद भी लज्जा से मेघों की ओट में हो जाता था कहाँ गया उसके कोमल शरीर का वह आकर्षण जिसे देखकर उसकी ओर विना आकृष्ट हुए कोई भी नहीं रह सकता था। किन्तु अब अब तो वह केवल हाड़-मांस का पंजड़ मात्र रह गई थी।

निकट पहुँचकर दोनों रुक गये। पूनमी के हृदय की धक-धक और भी बढ़ गई। उसे ऐसा लगा कि मानो उसका हृदय आज

पसलियों को तोड़कर बाहर निकल जायगा। इसी क्षण उसे इतनी घबड़ाहट क्यों हो रही है वह समझने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी। इससे पूर्व तो वह कभी भी इतना न घबड़ाई थी।

विवादी ने पुकारा "दीदी, आँखें खोलो !"

जितनी उत्सुकता उसे कुछ क्षण पूर्व नेत्र खोलने के लिए थी उससे कहीं अधिक हिचकिचाहट अब उसे खोलने के लिए हो रही थी।

"दीदी, आँखें खोलो।"

पूनमी के नेत्र खुल गये। सतांशू पर दृष्टि पड़ते ही उसके नेत्र खुले के खुले ही रह गये। एक क्षण में ही बीते हुए दिनों का प्रत्येक दृश्य उसके नेत्रों के समक्ष घूम गया। उसका हृदय भर आया और नेत्रों से अश्रुधारा कपोलों पर ढुलकने के लिए मचलने लगी। सतांशू भी स्वयं में खो गया। और तभी उसके नेत्रों से भी आँसू गिरने लगे।

इस दृश्य का आलोकन और अधिक न कर सकने के कारण विवादी वहाँ से चुपचाप चला गया।

पूनमी ने अपना मुख तकिये में छिपा लिया। लाख रोकने पर भी अश्रुकण न रुके। सतांशू भी कुरसी पर बैठकर रूमाल से नेत्र मूँद रोने लगा। कुछ क्षण यों ही व्यतीत हो गये। आँसुओं ने जब उनके हृदय की व्यथा धो दी तो उनका रोना सिसकियों में बदल गया।

यह बादल भी छँट गये तो सतांशू ने अन्तिम बार आंसू पोंछ कर उसकी ओर देखते हुए कहा "अधिक न रोओ पूनमी ! तुम्हारे स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ेगा।"

परन्तु पूनमी फिर भी सिसकती रही।

"पूनमी ! अब मत रोओ···जो होना था वह तो हो गया।"

पूनमी ने गीले नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए कहा "जो होना था वह कहाँ हुआ ! होना तो वह चाहिए था जो मैं चाहती थी ! किन्तु हुआ वह सब जिसकी आशा स्वप्न में भी मुझे न थी ! तो आप कैसे कह सकते हैं कि जो होना था वही हुआ ? होना तो चाहिए था कि मैं आपकी दासी बनती वह न हुआ। और फिर यदि वह न होने वाला ब्याह हो ही गया था तो फिर मुझे विधवा न होना चाहिए था किन्तु वह भी हो गया ! मुझ दुखिया के दुर्भाग्य पर यदि यह जग आँसू न बहा सके तो उसे हँसना भी न चाहिये था। फिर अब आप ही बताइए कि आज तक वह सब कहाँ हुआ जो होना चाहिए था ? बल्कि आज तक तो वही हुआ है जो न होना चाहिए था।"

"इतना अधीर न होओ पूनमी ! भगवान् जो कुछ भी करते हैं अच्छा ही करते हैं..."

"उनके ऊपर से भी अब मेरा विश्वास हटता जा रहा है। कभी किसी के लिए भी वह अच्छा नहीं करते।"

"ऐसा न कहो, पूनमी ! कहना तो दूर रहा ऐसा तो सोचना भी पाप है।"

"आप भूलते हैं ! जो मीठी बातों की ओर कभी ध्यान नहीं देता वह कडुवे शब्दों से शीघ्र क्रोधित हो जाता है और तब अपनी कोप का प्रयोग करता है। मुझे भी देखना है कि कहाँ तक वह मुझे अपने प्रकोप का लक्ष्य बनाता है। कष्ट जब अधिक बढ़ जाता है तो वह कष्ट नहीं देता। यदि वह दयालु है तो और कष्ट देने के पूर्व मुझ दुखिया की पीड़ा पर ध्यान देगा और फिर दुःखी होकर वह मुझे अवश्य दया प्रदान करेगा। अतः आप मुझे न रोकिये। उस निर्दयी की गाथा गाने दीजिये। देख रहे हैं न आप ! कुछ सोचिए तो ! मैंने कौन-सा पाप किया था

जिसके लिए इतना बड़ा दण्ड मिला है। इस दण्ड को सहन करने की शक्ति अब मुझमें नहीं है।"

सतांशू को उसकी मानसिक व्यथा का कुछ-कुछ ज्ञान हो चला था। यह समझने में उसे कठिनाई न हुई कि इसका हृदय पीड़ित है। वह पक चुका है। उसमें से जो भी निकलेगा वह मवाद और गंदे रक्त के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो सकता और उसका निकल जाना ही अच्छा है। इसलिए उसने उसे रोका नहीं और चुपचाप बैठा उसकी ओर देखता रहा।

उसका विचार ठीक था। काफी देर के पश्चात् उसे थकावट आ गई और शान्त हो गई। कुछ क्षण यों ही व्यतीत हो गये। फिर उसे अपनी शिष्टता का ध्यान आया। क्या यही था उसका शिष्टाचार कि उसने अतिथि को बैठने तक को नहीं कहा। उसका सम्मान तक न किया। उससे चाय इत्यादि को भी न पूछा। यह सोच वह बड़ी लज्जित हुई।

"न जाने क्या हो गया है मुझे कि आपको बैठने तक को न कहा।"

"तो मैं खड़ा कब हूँ। मैं तो बैठा ही हुआ हूँ।"

"तो अच्छी तरह से थे आप ?"

"हाँ प्रसन्न ही हूँ।"

"विवादी भइया से कहाँ मुलाकात हुई ?"

"वहीं जहाँ वह गये थे। थोड़ा-सा सुनीती के पिता से परिचय हो गया था सो वह उसी दिन मुझे अपने यहाँ घसीट ले गये जिस दिन वहाँ विवादी पहुँचे थे।"

"तो क्या आप सुनीती को जानते हैं ?"

"भली भाँति जानता हूँ। वह मेरे साथ कालेज में पढ़ती थी। किन्तु उसकी मित्रता थी तुम्हारे विवादी भइया से !"

"तो विवादी उसको पहले से जानता है ?"

"जानता ही नहीं बल्कि दोनों एक-दूसरे को प्यार भी करते थे। परन्तु अब ·····"

"परन्तु अब वह न मिल सकेंगे यही न !"

"हाँ उसने अपनी अभिलाषाओं का बलिदान अपनी दीदी की अभिलाषा पूरी करने के लिए कर दिया।······"

पूनमी को विवादी की वह बात स्मरण हो आई 'छोड़ो दीदी, मैं बहुत बुरा हूँ। यदि अच्छा होता तो ऐसा कभी न करता।' उसे लगा कि उसने विवादी के साथ बड़ा अन्याय किया है। किन्तु इसमें दोष उसी का है। उसने मुझे बताया क्यों नहीं।

"तो आप भी वहीं रहते हैं ?"

"मैं वहाँ भी नहीं रहता और कहीं भी नहीं रहता। मैं तो इसी प्रकार घूमता रहता हूँ।"

"तो क्या विवाह नहीं किया ?"

"हाँ किया था एक बार।"

"एक बार !"

"हाँ एक बार ! और वह भी किसी को मालूम नहीं।"

"और किसी को मालूम भी नहीं !"

"हाँ किसी को भी मालूम नहीं ! स्वयं उसको भी नहीं जिसके साथ मैंने ब्याह किया है !"

"स्वयं उसको भी नहीं !"

"हाँ स्वयं उसको भी नहीं ! क्योंकि मैंने उसे बताया जो नहीं था !"

"आपने उसे बताया भी नहीं था ! छोड़िये यह हँसी ! कहते क्यों नहीं कि आपने अभी तक ब्याह नहीं किया !"

"किन्तु मैं ऐसा कहूँ ही क्यों ? मैंने तो उसे अपने हृदय में

पत्नी रूप में स्वीकार जो किया है। क्या हुआ यदि दुनियां ने हमें न मिलने दिया।"

पूनमी से यह पहेली अब अधिक समय तक छिपी न रह सकी !

"तो अभी तक मुझको भूले नहीं ?"

"और शायद आगे भी न भूल सकूं। तुमको भुला सकूं ऐसा हृदय मेरे पास नहीं है !"

: १९ :

पूनमी के समक्ष अब एक समस्या और आ गई थी। जो कुछ भी था, वह किसी के सहारे अपना जीवन तो काट ही रही थी किन्तु अब उसके लिए उस प्रकार दिन काटना भी कठिन हो रहा है। जिसको वह भी रोकर स्मरण कर लिया करती थी वही अब उसके सम्मुख आकर उपस्थित हो गया है। वह चाह कर भी अपना हृदय उसके समक्ष नहीं खोल सकती थी। समाज ने उसके लिए वह द्वार बन्द कर दिए थे। उससे वह अधिकार छीन लिए थे। अब वह विवश थी। उसके हाथ-पांव तक को जंजीरों और बेड़ियों में जकड़ दिया गया था।

उसने सोचा कि उसके जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं ने आज तक उसके लिए उपद्रव ही खड़ा किया है। उसे सदा उलझन के जाल में फँसाती आई हैं। उसके लिए आफतें ही उत्पन्न करती आई हैं। एक समस्या को वह सुलझा न पाती कि दूसरी उसके सिर पर आकर सवार हो जाती।

इधर जब से विवादी लौटकर आया था माला ने उससे अधिक बातचीत करना बन्द कर दिया था। परन्तु उसने कोई

विशेष ध्यान न दिया था। वापस आने के पश्चात् उसका मन केवल सुनीती के लिए व्याकुल रहा करता था। वह प्रत्येक क्षण उसी के बारे में सोचता रहता। वह आज भी बैठा हुआ उसी के बारे में कुछ सोच रहा था कि नौकरानी ने उसे यह बताया कि मालकिन उसे अपने कमरे में बुला रही हैं। इस घर में सब नौकर पूनमी को मालकिन कहते थे। वह उठकर पूनमी के कमरे की ओर चल पड़ा।

पूनमी इस समय तकिये के सहारे बैठी हुई उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। विवादी वहाँ पहुँचकर कुरसी पर बैठ गया। दोनों में से कोई कुछ न बोला।

कुछ क्षण पश्चात् विवादी ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा "दीदी मुझे क्यों बुलाया ?"

"बताती हूँ !...तुमने यदि यह ब्याह हो जाने का प्रयास न किया होता तो अच्छा था।"

"तो तुम्हारा मतलब मैंने बुरा किया...किन्तु मैंने तो वही किया जो तुम चाहती थीं।"

"हाँ उस समय तो यही चाहती थी किन्तु अब सोचती हूँ कि सुनीती के साथ ब्याह का न होना ही अच्छा है।"

"क्यों ? हुआ क्या ?"

"होना क्या है ? तुमने ठीक से सारी बातें जो नहीं बताई !"

"मैं तो सारी बातें तुम्हें बता चुका हूँ !"

"नहीं, बल्कि तुमने सारी बातें छिपाई हैं ! क्या तुम सुनीती को पहले से नहीं जानते थे ?"

"इस बात को छोड़ो दीदी !"

"रहने दो भइया, मुझे सब कुछ ज्ञात हो चुका है। तुमने मेरे लिए सदा ही कष्ट उठाया है पर तुम्हें उसमें सफलता नहीं

मिली है। इस बार भी तुम्हें असफल होना पड़ेगा। मैं तुम्हारे सारे उपकारों का बदला तो नहीं चुका सकती क्योंकि न तो मुझमें अब उतनी शक्ति ही शेष है और न मैं अब और अधिक दिनों तक जीवित ही रहूँगी।"

"दीदी ऐसा न कहो, तुम्हें मेरे लिए जीवित रहना होगा। तुम न रहोगी तो कौन बड़ा बनकर मेरे सिर पर हाथ रखेगा !"

"इतना अधीर होने से क्या लाभ ! मैं कोई अमर होकर थोड़े ही आई हूँ। सबकी भाँति एक दिन मुझे भी संसार छोड़ना पड़ेगा। सोचती हूँ कि इस छोटे से जीवन में मैं किसी का भी भला नहीं कर सकी हूँ। जहाँ-जहाँ भी मुझ अभागिन के पग पड़े हैं शनि देवता ने अपना प्रभाव अवश्य दिखाया है। किसी को भी मेरे सम्पर्क में आने पर सम्मान नहीं मिला। यहाँ तक कि मेरे कारण उनको भी दुःख उठाना पड़ रहा है जिन्होंने मुझे सुख पहुँचाने का प्रयास सदा ही किया है। इसीलिए हृदय व्याकुल हो रहा है कि मृत्यु के पूर्व किसी का भला तो कर जाऊँ। किसी को तो सुखी करके इस संसार से मुख मोड़ूँ।"

"दीदी तुम्हारी आज की बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। इस संसार में कौन सुख-दुःख रहित है ? जो इस माया रूपी संसार में आया है उसको सुख और दुःख दोनों भोगना पड़ता है। दीदी यह तुम्हारी भूल है कि तुम्हारे कारण कुछ लोग दुःख पा रहे हैं। मनुष्य में इतनी शक्ति ही नहीं कि वह किसी को दुःख दे सके या किसी का सुख ले सके। यह सब पूर्व कर्मों का फल है जो लोग भोग रहे हैं। इसलिए तुम अपने जी को परेशान न करो। मैंने कोई बड़ा काम नहीं किया। यह तो कोई भी कर सकता था। मैं तो भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि बहन को प्रसन्न करने के लिए इससे भी कठिन अवसर मुझे मिले चाहे

उसके उपलक्ष्य में मुझे जान ही क्यों न देनी पड़े। मैं तब अपने को भाग्यशाली समझूँगा कि बहन को प्रसन्न तो कर सका। दीदी, दिल्ली-नरेश हुमायूँ केवल दो कच्चे धागों में बँध कर ऐसी स्त्री को बहन मानकर सहायतार्थ दौड़ पड़े थे जिसे वह पहले से जानते भी न थे। तो उस पर ध्यान देते हुए मैं कह सकता हूँ कि मैंने तो अपनी सगी बहन के लिए कुछ भी नहीं किया। तुम आज्ञा दो दीदी, यह सिर भी तुम्हारे चरणों में रख दूँगा।"

"ऐसी आज्ञा तो दूर रही भइया; ऐसा सोचना भी घोर पाप है।" किन्तु तुम्हें मेरी यह प्रार्थना माननी ही पड़ेगी। यह ब्याह फिर से रोकना होगा।"

"इसके लिए तुम मुझ से न कहो, मैं कदाचित अब यह न कर सकूँगा।"

"परन्तु तुम्हें करना ही होगा विवादी, यदि मेरे लिए नहीं तो शेखरन बाबू के लिए ही; नहीं तो अपने उस प्यार के लिए इस ब्याह को रोकना ही होगा जो तुमने सुनीती को दिया है या उससे पाया है।"

"दीदी मुझे अधिक विवश न करो। मुझे इतना मत ढकेलो कि मैं अपने आदर्शों से गिर जाऊँ। जिसको मैं बलिदान कर चुका हूँ उसको पुनः पाने का अधिकारी मैं नहीं हूँ। यह कहाँ की मान्यता है दीदी कि दी हुई वस्तु वापस ले ली जाय!"

"किन्तु उसे तो किसी-न-किसी को लेना ही होगा!"

"किसी-न-किसी को! क्या कहती हो दीदी! क्या शेखरन ......।"

"हाँ विवादी, शेखरन बाबू ने मुझसे स्वयं आकर कहा कि वह सुनीती से ब्याह न करेंगे।"

"ब्याह न करेंगे! किन्तु क्यों?"

"इसमें उनका कोई दोष नहीं। कुसमय के कारण वह बेचारे विवश हो गये हैं।"

"कैसा कुसमय दीदी ?...समझा उन्हें मेरे प्यार का ज्ञान हो चुका है। किन्तु उनसे कह दो कि मैंने अपना प्यार तक बलिदान कर दिया है। कभी उसे प्यार अवश्य करता था किन्तु अब उसे भूल जाने का प्रयत्न करूँगा।"

"नहीं विवादी यह बात भी नहीं है उनको तो यह सब कुछ भी नहीं मालूम।"

"तब क्या बात है दीदी, साफ़-साफ़ कहो।"

"कहते डरती हूँ कि तुम कदाचित न सुन सको।"

"तुम कहो तो दीदी तुम्हारी प्रत्येक बात सुनने को तैयार हूँ।"

"शेखरन बाबू के बारे में तुम्हारा क्या विचार है ?"

"दीदी यह तुम क्या पूछ रही हो! मेरा तो उनसे अभी थोड़े ही दिनों का परिचय है किन्तु फिर भी विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि उनके आचरण में कोई धब्बा नहीं है।"

"किन्तु अब वह उसमें लगने वाला है। मुझे भी बड़ा शोक है कि कीचड़ ऐसे मनुष्य के कपड़े पर पड़ने वाला है जो सदा कपड़े को साफ़ रखना पसन्द करता है और फिर तुम जानते ही हो कि जब गंदगी लग जाती है तो फिर उसका साफ़ करना कठिन हो जाता है।"

"साफ़-साफ़ कहो दीदी !"

"विवादी वह गंदगी माला है जो जबरन शेखरन को गंदा करना चाहती है।"

"उफ़ दीदी ! यह तुम क्या कह रही हो ?"

"मैं ठीक कह रही हूँ विवादी। तुम बुरा न मानना। उसके

आचरण के बारे में तुमसे बहुत पहले कहना चाहती थी किन्तु भयवश न कह सकी कि कहीं तुम मुझसे नाराज़ न हो जाओ।"

"इसमें नाराजगी की क्या बात दीदी……यदि ऐसा है तो आज्ञा दो मैं आज ही उसको लेकर वापस चला जाऊँ।"

"किन्तु अब वह तुम्हारे ले जाने से भी न जायगी।"

"क्यों ?"

"उसने ऐसा जाल बिछाया है कि उसमें से उसे या शेखरन को निकालना कोई सुगम नहीं है। जो उसे निकालने जायगा वह स्वयं भी उसी जाल में फँस जायगा।"

"दीदी यह कैसी अनहोनी बात कह रही हो ?"

मैं ठीक ही कह रही हूँ। माला ने डरा कर शेखरन से एक ऐसा पत्र लिखवा लिया है कि जिसे देखकर प्रतीत होता है कि दोनों का ब्याह हो चुका है।"

"ब्याह हो चुका है !"

"यथार्थ में ऐसा नहीं है। वह तो केवल उस पत्र से ज्ञात होता है और माला उसी पत्र द्वारा उन्हें अपने वश में किये हुए है। वे बेचारे कुल को अपमान से बचाने के लिए उसके हाथ में कठपुतली की भाँति नाच रहा है। उसी ने ब्याह न करने के लिए शेखरन को मुझसे कहने को कहा था और मैं तुमको यह भी बताती हूँ कि उसके लक्षण अच्छे नहीं हैं। वह केवल शेखरन की आड़ में खेल-खेलना चाहती है। यह भी निश्चय के साथ कह सकती हूँ और तुमसे भी अनुरोध करती हूँ कि ऐसी नारी से ब्याह न करना।"

"दीदी तुम ठीक कहती हो। उसके लक्षण अच्छे नहीं हैं। वह पहले भी एक बार खाई में गिर चुकी है। समाज उसको ठुकरा चुका है। वह समाज में घृणा की पात्र समझी जाने लगी

है। वह ब्याह के पूर्व ही एक बच्चे की माँ बन चुकी है।"

"एक बच्चे की माँ बन चुकी है !"

"हाँ दीदी !"

"तुम इन बातों से परिचित थे ?"

"हाँ दीदी !"

"फिर भी उसके जाल में फँस गये ?"

"परन्तु तब उसने कोई चाल नहीं चली थी।"

"तो ?"

"हाँ दीदी उसने कोई चाल नहीं चली थी। यह तो मैं तुमको बता ही चुका हूँ कि घर छोड़ने के पश्चात् जब मुझे कहीं भी सिर छिपाने का स्थान न मिला था तो इसके पिता ने मुझे एक छोटी-सी नौकरी दी थी। फिर मुझ पर तरस खाकर मेरे हाथ का इलाज भी उन्होंने अपने ही पैसों से कराया था। दूसरी ओर माला ने भी मेरी बहुत सेवा की थी। मैं उसकी सेवा के भार से तथा उसके पिता के उपकारों के भार से इतना दब चुका था कि प्रत्येक क्षण यही सोचा करता था कि किस प्रकार इसका बदला चुकाऊँ। इसी बीच माला के भाव मेरी ओर से काफी बदल चुके थे। अब वह मुझसे प्रेम करने लग गई थी। किन्तु न मैंने ही कभी उसे यह समझने का अवसर दिया कि मैं उसकी सेवाओं के भार से दबा हुआ हूँ और न वह स्वयं ही कह सकी। परन्तु वह अवसर एक दिन आ ही गया। उसने बताया कि उसके पिता ने मुझे उसके लिए पसन्द किया है।"

"यह उसके पिता ने नहीं बल्कि स्वयं उसने कहा !"

"हाँ दीदी ! उसी ने कहा। इसका भी एक कारण था ! और इसीलिए उसने अपने पिता के पूर्व ही स्वयं बताया।"

"क्यों ! वह कारण था ?"

"वह कारण वही था जिसने उसे पतिता का नाम प्रदान किया था। उसने यह बात विवाह के पूर्व ही बता देना आवश्यक समझा कि वह एक बच्चे की माँ बन चुकी है। उसने मुझे अँधेरे में रखना ठीक नहीं समझा। क्योंकि वह मुझे जो प्यार करने लग गई थी। और प्यार में कोई बात छिपाई नहीं जाती। उसने कहा कि ऐसा न हो कि ब्याह के पश्चात् यह सब ज्ञात होने पर मैं उसे ठुकरा दूँ। उसके सच बोलने के कारण मेरा हृदय गद्-गद् हो गया। वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी थी। मैंने आवेश में उसे उठाते हुए कहा था कि तुम पुरुष जाति के कारण घृणा की पात्र बनी हो तो मैं उसी जाति का होने के कारण तुम्हें अवश्य अपनाऊँगा। परन्तु मैं…"

"किन्तु क्या ! रुक क्यों गये, कहो ?"

"किन्तु मैं धोखा खा गया दीदी ! मैं उसे न पहचान सका था ! एक नारी को न जान सका ! और इसीलिए आज अनुभव कर रहा हूँ कि नारी को पहचानना बड़ा कठिन है !"

पूनमी को ऐसा लगा कि यह बात उसने माला के लिए नहीं बल्कि उसके लिए कही है। वह भी एक नारी है ! वह भी तो सब को धोखे में रखे हुए है। उसके हृदय में भी तो कुछ और ही है जिसे वह किसी को प्रकट नहीं होने दे रही है ! सबको धोखा देने के साथ-साथ वह स्वयं को भी धोखा दे रही है। कहीं विवादी ने उसके हृदय का चोर तो नहीं पकड़ लिया है……।

उसे चुप देख विवादी बोला "दीदी तुम घबड़ाओ नहीं ! शेखरन बाबू को बचाने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करूँगा। मेरा कर्त्तव्य मुझे तुम्हारी सहायता करने के लिए बुला रहा है। तुम निश्चिन्त रहो दीदी, तुम्हारा भाई अभी मरा नहीं है। उसके जीवित रहते तुम्हारी आँखों में आँसू नहीं आ सकते। तुम जो चाहती हो वही होगा।"

इतना कह और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह वहाँ से चला गया। पूनमी उसे देखती ही रह गई और कुछ बोल न सकी।

: २० :

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। वह अपने निश्चित लक्ष्य की ओर सदा अग्रसर रहता है। यही कारण है कि वह किसी से प्रभावित न होकर स्वयं ही सब पर अपना प्रभाव डालता हुआ बढ़ता ही जाता है। वही मनुष्य सफलता प्राप्त करता है जो उसकी गति को पहचान कर अपना मार्ग निर्धारित करता है। उसके प्रतिकूल चलने पर सदा ही निराशा होती है।

विवादी ने भी अपना मार्ग पहचान लिया था। उसने समय को बदलने की चेष्टा नहीं की। उसने एक ऐसा पग अवश्य उठाया जिसे समयानुसार नहीं कहा जा सकता था फिर भी उसे अपने मनोरथ में सफलता मिली। हो सकता है कि उसने वही किया जो उसे करना चाहिये था। या फिर जो समय चाहता था।

सतांशू और उसने मिलकर एक ऐसी योजना बनाई जिसके अनुसार कार्य करने पर उन्हें पूर्ण समलता मिल गई। उन्होंने एकान्त में शेखरन को सब कुछ समझा दिया। प्रथम तो शेखरन ने उनकी बातों को मानना स्वीकार न किया किन्तु फिर समझ कर उनकी इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया। पूनमी ने भी उसको समझाया कि माला से छुटकारा पाने का यही एक उपाय हो सकता है।

दिन बीतने लगे और योजना को सफलता मिलने की आशा हो गई। माला को इस परिवर्तन पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। किन्तु उससे कहीं अधिक प्रसन्नता हो रही थी कि अब शेखरन उसकी ओर पूर्णतया आकृष्ट हो चुका है। क्योंकि अब उसका अधिक समय उससे प्यार की बातें करने में व्यतीत होता है।

किन्तु उसे नहीं ज्ञात था कि जिस जाल को बिछाकर शेखरन को फँसाया था अब अपने उसी जाल में वह स्वयं ही दिन-प्रतिदिन जकड़ती जा रही थी। वह इस समय उस पक्षी की भाँति थी जिसे शिकारी एक-एक दाना छोड़कर अपने निकट बुला रहा हो और वह उन्हीं एक-एक दानों को खाती हुई शिकारी के निकट बढ़ती जा रही हो!

एक दिन शेखरन ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा "माला एक बात पूछूँ ?"

"तो मैंने मना कब किया है !"

"यह मैंने कब कहा किन्तु सोचता हूँ कि यदि तुम न मानीं तो ?"

'यदि मानने योग्य होगी तो क्यों न मानूँगी।"

"है तो वह इसी योग्य ! फिर भी डरता हूँ।"

'आप कहिये तो··"

'क्या हम इसी प्रकार जीवन व्यतीत कर देंगे ?"

"मैं आपका मतलब नहीं समझी !"

"क्या और भी स्पष्ट कर बताना होगा ? क्या मेरे व्याकुल मन की व्याकुलता को तुम अभी तक न जान सकीं ?"

शेखरन की इन बातों ने माला को बड़े असमंजस में डाल दिया। यदि उसका अनुमान ठीक है ! यदि उसने शेखरन को ठीक-ठीक समझ लिया है तो क्या यह सब सत्य है ! क्या

सचमुच अब वह उसके लिए व्याकुल रहने लगा है ? क्या उसे शेखरन के हृदय में अपना मन चाहा स्थान मिल गया है ?

"क्या आप सच कह रहे हैं ?"

"हां माला ! मेरी वह घृणा अब प्रेम में बदल गई है।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।"

"मैं इसके अतिरिक्त और क्या कह सकता हूं कि तुम मुझ पर विश्वास करो। समय ने मुझे तुम्हारी प्रेम डोर में बांध दिया है ! और अब मैं बिना तुम्हारे जीवित भी न रह सकूंगा।"

माला फिर शंका में पड़ गई। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसे लगा कि जैसे आज वह स्वप्न देख रही है ! नहीं तो यह कैसे हो सकता है कि कल तक जो मुझे घृणा की दृष्टि से देखता था वही आज मेरे प्रेम का राग अलापने लगे। कहीं शेखरन केवल मुझे प्रसन्न करने के लिए तो यह चाल नहीं चल रहा है !

"इन ऊपरी बातों से क्या लाभ ?"

"तुम इन्हें ऊपरी बातें कहती हो परन्तु तुम्हें धीरे-धीरे विश्वास हो जायगा और तब एक दिन तुम स्वयं अपने इस अविश्वास पर पश्चाताप करोगी।"

माला सोचने लगी कि ऐसा लगता है कि शेखरन मुझे धोखा नहीं दे रहा है। उसकी बातें सत्य से भरी हुई हैं। कदाचित एक दिन मुझे पश्चाताप भी हो। उसे लगा कि जैसे अभी से उसके हृदय में पश्चाताप का उबाल आरम्भ हो गया है। और उसे यह भी ज्ञात था कि उबाल को न रोकने का परिणाम होता है सब कुछ खो देना। फिर भी वह शीघ्र मानने वाली न थी।

"तो क्या आप मुझे कोई प्रमाण दे सकते हैं ?"

"किन्तु तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास क्यों नहीं आता ?"

"न जानें क्यों ? किन्तु यह सच है कि बिना प्रमाण के मेरी शंका दूर नहीं हो सकती।"

"क्या शंका है तुम्हें ?"

"सोचती हूँ कि कहीं आप मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हैं ?"

शेखरन को समझने में देर न लगी कि मछली काँटे में फँसने ही वाली है। तनिक चारा और लगाने की आवश्यकता है। किन्तु चारा लगाने के पूर्व यह जानना आवश्यक समझा कि चारा होना कैसा चाहिये ? ऐसा न हो कि कहीं ना समझी में उसका लाया हुआ चारा मछली को भड़का दे और तब बनता खेल बिगड़ जाये।

"सब से बड़ा प्रमाण यही है कि मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता।"

'यह तो कोई प्रमाण नहीं हुआ। मुँह से कहना कुछ कठिन नहीं है। मुझे कोई प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए।"

"वह भी दे सकता हूँ !"

"तो देर क्या है !"

"किन्तु उसके पूर्व तुमसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ ?"

"पूछिये…"

"प्रमाण पाने के पश्चात् तुम मुझे धोखा तो न दोगी ?"

"यदि आपका प्रमाण बनावटी न जान पड़ा तो।"

"सुनकर प्रसन्न हो उठोगी और तब तुम्हें अपनी शंका पर स्वयं लज्जित होना पड़ेगा। किन्तु उसके पूर्व तुमसे प्रमाण माँगता हूँ।"

'तो सुनिये ! यदि आप मुझे प्यार करने लगे हैं तो मैं आपका लिखा हुआ वह कागज़ जला दूँगी !"

शेखरन का मन प्रसन्नता से फूल उठा। वह विवादी के बताये जिस मार्ग पर चल रहा था अब उसके अन्त में कुछ भी

कठिनाई न रह गई थी। एक क्षण के लिये उसे यह भी अनुभव हुआ कि वह नभ में स्वतन्त्र चित्त से उड़ रहा है और अब उसे किसी का भी भय नहीं रह गया है। फिर दूसरे क्षण अपने विचारों पर वह स्वयं मुस्करा पड़ा।

"तो सुनो माला, मैं तुम्हें हृदय से प्यार करने लगा हूँ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन नीरस है! और अब मैं इसीलिए तुमसे विवाह करना ..."

"विवाह!"

"हाँ विवाह! वही एक ऐसा सूत्र है जो हम दोनों को सदा के लिए एक कर देगा। फिर हम दोनों इस प्रकार छिप-छिपकर नहीं मिलेंगे। सब की भाँति हम भी स्वतन्त्रता से घूमेंगे।"

"आप हँसी तो नहीं कर रहे हैं!"

"नहीं माला मैं सच कह रहा हूं और तुम्हें यह भी जानकर प्रसन्नता होगी कि मैंने विवादी को मना लिया है!"

"सच!"

"हाँ! वह तुमको लेकर कल तुम्हारे पिता के पास जायेंगे।"

"परन्तु..."

"यह सब कुछ नहीं। तुम केवल मुझ पर विश्वास करो। हमने दिन इत्यादि सब निश्चय कर लिया है। अगले सप्ताह शुक्रवार के दिन हमारा ब्याह होगा..."

"इतनी जल्दी करना..."

"इसकी चिन्ता तुम न करो। भगवान् चाहेंगे तो सब काम सोची हुई विधि के अनुसार अपने निश्चित समय पर हो जायगा।"

: २१ :

विवादी तथा माला के चले जाने के पश्चात् पूनमी को घर काटने को दौड़ने लगा। अभी तक तो वह माला के नीच घातों में उलझी हुई समय काट रही थी किन्तु अब उसके लिए कुछ भी सोचने विचारने को न रह गया था। एकान्त अब उसे अखरने लगा। इन कुछ दिनों से उसका ध्यान स्वयं की बीमारी की ओर से हट गया था परन्तु अब कभी-कभी वह अपनी इस पुरानी बीमारी पर घबड़ा उठती थी।

शेखरन और सतांशू का परिचय मित्रता में परिवर्तित हो गया था अतः शेखरन के आग्रह पर वह अभी तक जा न पाया था। दोनों का समय प्रसन्नता पूर्वक कट रहा था और कभी-कभी पूनमी को भी उनकी हँसी में सम्मिलित होना पड़ जाता था। उसका वह आनन्द जो उसे उस समय मिलता था अवर्णनीय है। वह उतने क्षणों के लिए स्वयं को बिलकुल भूल जाया करती थी।

कभी-कभी सतांशू उसे अपने गीत भी सुना दिया करता था। पूनमी उसकी ओर देखती हुई उन गीतों में खो जाया करती थी। उस समय उसे अनुभव होता कि जैसे वह उन्हीं गीतों के सहारे सतांशू के हृदय मन्दिर में प्रवेश कर रही है। वहाँ पहुँचकर वह देखती कि उसकी वह मूर्ति जो आज से कई वर्ष पूर्व वहां प्रविष्ट हुई थी अभी तक उसी स्थिति में उसी प्रकार सजीव विराजमान है। अब भी उस पर हार फूल चढ़े हुए हैं।

वह चौंक पड़ती और सोचती कि उसकी मूर्ति को अब वहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि प्रथम तो वह स्वयं वहाँ से हटाये जाने पर भी न हटी थी किन्तु अब तो उसे हटना ही पड़ेगा। उसका वह स्थान तो उससे छिन चुका है और अब

तो कोई-न-कोई वहाँ का अधिकार पा ही जायगा। ध्यान में ही वह उस मूर्ति को हटाने के लिए अपने हाथ बढ़ाती परन्तु उसके हाथ काँपने लगते और उस मूर्ति को हटाना तो दूर रहा बल्कि उसकी काँपती उंगलियाँ उसको छू तक न पातीं।

कभी-कभी वह स्वयं भी अधीर हो जाती थी। सतांशू अब उसके लिए एक समस्या बन गया था। वह जितना उसको भूलने का प्रयास करती वह उतना ही सजीव होकर उसके समक्ष आ जाता था। वह उससे भागने का जितना भी यत्न करती है वह उतना ही उसके निकट आता जा रहा था।

और कभी-कभी तो वह यह भी सोचने लगती कि सतांशू पर उसका पूरा-पूरा अधिकार है। उस पर कोई दूसरा अपना अधिकार क्यों जताये ? यह प्राकृतिक ही है कि चाहे मनुष्य ने एक वस्तु को घृणा के कारण ठुकरा दिया हो किन्तु उसी पर दूसरे को अधिकार जमाते देख वह सहन नहीं कर सकता। यही दशा इस समय पूनमी की थी। यह ठीक था कि वह सतांशू से दूर भाग जाना चाहती थी किन्तु साथ-ही-साथ वह यह भी सहन करने में असमर्थ थी कि कोई अन्य सतांशू पर अपना कहकर पुकारे। ऐसी भावना उसके हृदय में क्यों उत्पन्न हो रही थी यह उसे भी ज्ञात न था। उसकी इच्छाओं को अपने विपरीत जाता देख कभी-कभी वह झुंझला भी उठती थी।

अभी तक उसका हृदय सब कुछ भूलकर केवल शेखरन की ओर बढ़ रहा था किन्तु उसका बढ़ना अब सतांशू की ओर घूम गया था। शेखरन का ध्यान उसे बहुत कम आता था। बहुत प्रयास करने पर भी अब वह अपने मन को नहीं रोक पा रही थी क्योंकि यह उसे ज्ञात हो चुका था कि एक दिन विवश होकर उसे स्वयं सतांशू के हृदय-मन्दिर को खाली करना होगा।

उसे ध्यान आया कि सतांशू ने सदा ही मेरी सहायता की है। पहले भी जब मेरा ब्याह न हुआ था और आज भी मुझे समाज में ऊँचा उठाने में। संसार में सब चाहते हैं कि कोई-न-कोई उनको प्यार करे, उनकी तारीफ़ करे किन्तु सतांशू ने सदा ही सबको प्यार देना ही सीखा है। पाने की आशा तो उसने कभी भी नहीं की। उसने सदा ही मुझे प्यार दिया और लिया केवल उन दुःखों को जिनके लेने से वह मुझे सुख दे सकता हो। सतांशू का स्थान उसकी दृष्टि में बहुत ऊँचा हो गया। उसके नेत्रों से श्रद्धा के फूल झड़ने लगे।

माला के ब्याह का दिन निकट आ गया। आज शेखरन और सतांशू दोनों माला के यहाँ जाने को तैयार हो रहे थे। तैयारी के पश्चात् उन्होंने सूटकेस में ताला लगाया। दोनों पर उदासी छाई थी। दोनों मौन थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दोनों को दण्ड मिला हो और उसी के पश्चाताप में दोनों जल रहे हों। कुछ क्षण इसी प्रकार बीत गये।

फिर कुछ सोचकर शेखरन ने अलमारी खोलकर ब्याह की दो रेशमी शेरवानी निकालीं जो इसी अवसर के लिए तैयार कराई गई थीं। उसने एक सतांशू की ओर बढ़ा दी और एक स्वयं लेकर सूटकेश की ओर बढ़ा। कुछ क्षण तक उसे देखने के पश्चात् उसने उसे सूटकेस में रख दिया। सतांशू ने भी अनमने मन से वैसा ही किया। दोनों शेरवानियों में सब कुछ एक-सा होते हुए भी एक विशेष अन्तर था। दोनों का कार्यमार्ग अलग-अलग था। एक-से-एक को स्वतंत्रता मिलने वाली थी और दूसरी से दूसरे को कारावास ! कैसी तांत्रिक शक्ति थी दोनों के पास।

इन सबसे निबटकर सतांशू धीरे-धीरे पूनमी के कमरे की ओर बढ़ा। आज उसके पैर मन-मन भर के हो गये थे। आज

के मिलन में और उस दिन जब विवादी ने लाकर मिलाया था, दोनों में कितना बड़ा अन्तर था। उस दिन वह आशा के विपरीत पूनमी से मिलने आया था और निराशा लिए सदा के लिए उससे बिछुड़ने आया था। उस दिन का मिलन अन्तिम न था किन्तु आज वह अन्तिम बार मिलेगा। पहले जब वह बिछुड़ा था तो कभी-न-कभी मिलने की आशा में किन्तु आज बिछुड़ने के पश्चात् उससे मिलने की पुनः आशा करना व्यर्थ था। उस दिन मिलन की उत्सुकता में उसके पग पृथ्वी पर नहीं पड़ रहे थे किन्तु आज विदाई के दुःख से उसके पग उसी पृथ्वी से उठ नहीं रहे थे। इतना बड़ा बलिदान देने पर उसके हृदय में प्रसन्नता की एक ज्योति अपना अलौकिक प्रकाश फैला रही थी! उसका यह बलिदान किसी की भलाई के लिए ही तो था।

कमरे के निकट पहुँचकर वह पूनमी की चारपाई के निकट जाकर रुक गया। पूनमी भी उसी की ओर देख रही थी। दोनों चुप थे। वातावरण शान्त था। कमरे में ऐसी निस्तब्धता छाई हुई थी कि जैसे वहाँ कोई है ही नहीं। दोनों के मस्तिष्क में शब्दों के सागर उमड़ रहे थे परन्तु अधरों के बाहर एक छींटा भी नहीं आ रहा था। ऐसा लगता था कि मानो किसी ने उनकी ग्रीवा में ताला लगा दिया है। कुछ क्षण यों ही बीत गये। पूनमी के नेत्र झुक गये।

निस्तब्धता भंग करता हुआ सतांशू बोला "मैं जा रहा हूँ……।"

पूनमी न बोली।

"मैं जा रहा हूँ · …"

इस बार भी पूनकी ने कुछ कहा तो नहीं बल्कि अपनी भीगी पलकों को ऊपर उठा दिया। उसके नेत्रों में रुके अश्रुकण ढुलक

पड़े। सतांशू घबड़ा उठा।

"तुम फिर रो रही हो...मैं..."

"इसमें आश्चर्य या घबड़ाने की कोई बात नहीं ! रोना तो मेरा जीवन बन गया है। हाँ हँसने पर आपको घबड़ाना चाहिये कि इस अभागिन को आज हँसी का खज़ाना कहाँ से मिल गया है !"

"यह तुम कैसी बातें कर रही हो ?"

"आज मैं ठीक ही कह रही हूँ।"

"पर शायद तुमको ज्ञात नहीं या ज्ञात है तो भूल गई हो कि आज मैं जा रहा हूँ।

"मैं भूली नहीं हूँ, पर क्या आप कभी न आयेंगे जो ऐसा कह रहे हैं।"

"कदाचित न आऊं।"

"तो फिर एक बार बिछुड़ने के पश्चात् आप क्यों आये ? क्यों आपने आकर मेरी सोई भावना को जगा दिया ? क्यों आपने मेरे कानों में पुनः अपने गीत अलापे ? क्यों आपने फिर आकर मुझ अभागिन को रोना दे दिया ? क्या यही था आपका कर्त्तव्य कि मुझ दुखिया को अपनी याद देकर रोने का मार्ग दिखा दें।"

सतांशू उसकी मानसिक पीड़ा को भली-भाँति समझ गया और वह यह भी समझ गया कि जो जीवन पूनमी व्यतीत करना चाहती थी उसको उससे दूर कर देने का पाप उसने अवश्य किया है। यदि वह विवादी के साथ न आता तो उसका वह मिटा हुआ चिह्न पूनमी के हृदय में कदापि न उभरता। वह तो उसे भूल ही चुकी थी। किन्तु उसने आकर फिर उसे अथाह सागर में फेंक दिया। जहाँ से वह जिस ओर भी दृष्टि डालती

है केवल उसे वही दिखाई पड़ता है और अब उसका सहारा लेना उसके लिए कलंक को अपनाना है। वह एक विवाहित नारी है। भाग्य ने उसे सोहाग का फल खाने का अवसर न दिया। इसी से वह अब उस फल की ओर देखना भी पाप समझती है। अपनी तृष्णा को बिलकुल मार देना चाहती है उसने आकर उसे उसके मार्ग से सचमुच ही विचलित कर दिया है। उसे अपनी करनी पर रोना आ गया।

"तुम ठीक कहती हो पूनमी ! क्या मुझे क्षमा न करोगी ! बिछुड़ने के पश्चात् तुम्हारे पास पुनः न आना चाहिए था। तुम्हारी सोई दुनिया को जगाने का मुझे कोई अधिकार न था। मैंने सचमुच ही बहुत बड़ा पाप किया है। भगवान् मुझे अवश्य इसका दण्ड दें। जाने से पूर्व एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि मुझको भूल जाना। समझना एक स्वप्न देखा था जो आँख खुलते ही ओझल हो गया। अब जाता हूँ। मुझे मेरा कर्त्तव्य बुला रहा है···अच्छा नमस्ते !"

सतांशू नमस्ते करके चला गया और वह उसे देखती ही रह गई। कुछ बोल न सकी। उसके द्वार से बाहर जाते ही वह तकिये में मुख छिपाकर रोने लगी। उसे अपने इस व्यवहार पर बड़ा पश्चाताप हो रहा था। उत्तेजना में उसने जो कुछ कह दिया था उसके लिए उसे बड़ा पछतावा हो रहा था।

: २२ :

गाड़ी से उतर कर माला और विवादी दोनों घर पहुँचे। न तो गाड़ी में दोनों में कुछ बात हुई और न स्टेशन से घर तक ताँगे में ही दोनों कुछ बोले। इन लोगों को आया देख ठेकेदार

बहुत प्रसन्न हुए। माला के सिर पर स्नेह से हाथ फेरने लगे। माला ने भी प्यार से उनके सीने पर सिर रख दिया। विवादी उनके प्रवाहित अश्रुकणों को देखकर सोच रहा था कि क्या यह प्रसन्नता के आँसू थोड़ी देर पश्चात् दुःख के आँसू न बन जायेंगे? क्या इनके बूढ़े हृदय में इतनी शक्ति है कि अपनी लाड़ली की करनी को सुन सकें ? क्या उस समय भी यह इसी प्रकार इससे स्नेह कर सकेंगे ? भगवान् तुम्हीं इनको संयम प्रदान कर सकते हो !

वह इसी प्रकार न जाने कब तक स्वयं में खोया रहता यदि ठेकेदार उसे न पुकारते।

"क्या सोच रहे हो बेटा ? क्या यहीं खड़े रहोगे।"

"सोच रहा हूँ कि आप माला को कितना प्यार करते हैं !"

तीनों घर के भीतर चल पड़े।

"बेटा क्या यह भी सोचने की बात है ! पिता अपनी सन्तान को कितना प्यार करता है तुम्हें समझने में देर लगेगी !"

विवादी का मुख लज्जा से झुक गया।

"और हाँ तुम्हारा हाथ तो ठीक हो गया ?"

"जी आपकी दया से…"

इन दोनों को बात करता देख माला वहाँ से भीतर चली गई।

"और तुमने वहाँ जाकर कोई पत्र भी नहीं लिखा !"

"यों ही कुछ ऐसे झंझट में फँस गया था कि अवकाश ही न मिला।"

"इतना !"

"जी हाँ !"

"क्यों, क्या तुम्हारी बहन बीमार हैं ?"

"जी।"

"तो कुछ दिन और भी रुक जाते।"

"नहीं मेरा शीघ्र आना ही अच्छा था।"

"कहीं भाई-बहन में झगड़ा तो नहीं हो गया!"

"जी नहीं ऐसा तो सोचना भी व्यर्थ है।"

"तो समझा माला से झगड़ा हो गया है!"

"जी नहीं।"

"तो फिर कहो क्या बात है? शीघ्र बताओ मुझे अधिक उलझन में न डालो।"

"वैसे तो कोई विशेष बात नहीं किन्तु आपसे कहना अति आवश्यक था अतः आना पड़ा।"

"आवश्यक है! तो कहो न।"

"हाँ अब तो कहना ही पड़ेगा।"

"यह सब छोड़कर वह बात बताओ।"

"तो सुनिये ·।"

"रुक क्यों गये?"

"नहीं यहाँ कहना ठीक नहीं है। एकान्त में बताऊँगा।"

"तो यह एकान्त ही तो है, कहो न।"

"नहीं यहाँ नहीं! कदाचित आपको ज्ञात नहीं कि दीवारों के भी कान होते हैं। चलिये हम लोग बाहर चलेंगे। वहीं बातें होंगी।"

"अच्छी बात है, तुम तनिक स्नान इत्यादि से निबट तो लो फिर चलेगे।"

विवादी उठकर अपने कमरे में चला गया। ठेकेदार ने ऐसा कह तो दिया किन्तु बात जानने के लिए प्रतिक्षण उसकी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। उन्होंने सोचने का बहुत प्रयास

किया किन्तु ठीक बात न जान सके। उस घटना तक पहुँचने में उनका मस्तिष्क असमर्थ था क्योंकि यह बात उनके अनुमान से बाहर की थी। यह कैसे संभव हो सकता था कि माला के पग उस दिशा की ओर पुनः बढ़ेंगे जिस ओर जाने का मार्ग उसने स्वयं बन्द कर दिया था।

दोनों एक-दूसरे को प्यार करने लगे थे और उसी प्यार ने ही तो उसे सब कुछ कह देने पर बाध्य किया था। उसी प्यार ने तो विवादी को ऐसे घृणित कार्य पर भी उसे अपनाने पर बाध्य किया था। तो फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि माला ने उसी को ठुकराने का निश्चय कर लिया हो जिसने उसी के लिए समाज से टक्कर लेना स्वीकार किया हो।

ठेकेदार बराबर उतनी देर तक सोचते रहे जब तक विवादी वापस न आ गया। फिर वह उसके साथ बाहर की ओर चल पड़े। माला ने उन्हें जाता देख लिया। वह उनका आशय तो समझ गई थी किन्तु अब वह इस चिन्ता में पड़ गई थी कि क्या बातें होती हैं। यदि विवादी ने बजाय बात बनाने के बिगाड़ दिया तो फिर उसे कितना लज्जित होना पड़ेगा। उसके पिता उसके बारे में क्या सोचेंगे? वह क्योंकर उनके समक्ष सिर उठा कर चल सकेगी?

अब उसने अपनी स्थिति के बारे में सोचना आरम्भ किया। उसने जो कुछ कर डाला था उसे वह सब नहीं करना चाहिये था। एक बार स्वयं की ना समझी के कारण उसको और उसके पिता को कितना अपमान उठाना पड़ा है। उसने अपने पिता के सिर को सदा के लिए नीचा कर दिया। अपने कलंक से अपने पिता को और अपने कुल को सदा के लिए कलंकित कर दिया।

क्या यही था उसका कर्त्तव्य कि उस पिता को जो उसे

अपने से अधिक स्नेह करता था, सदा के लिये अन्य के समक्ष व्यंग का पात्र बना दे। वह अपने साथ उन्हें भी ले डूबी थी। उस समय जब उनके सम्मान की नौका इस अथाह-सागर में डगमगा रही थी तो न जाने कहाँ से विवादी ने आकर उसको किनारे पर लगाने के लिए पतवार थाम लिया था। जब ऊँची उठती तूफ़ानी लहरों के थपेड़ों से उसकी नौका टूटने ही वाली थी तो इसी विवादी ने आकर मँझधार में उसको सहारा दिया।

उसने तो किसी का साथ न दिया। सब ने उसकी सहायता करनी चाही किन्तु उसने तो सबकी सहायता का तिरस्कार किया। सब ने उसे उस भटके हुए मार्ग से हटाकर ठीक मार्ग पर लगाने का प्रयास किया किन्तु उसने तो सब को ठुकरा कर उसी मार्ग पर चलना ठीक समझा। जिस गंदी खाई में वह एक बार गिर चुकी थी उसमें से निकलने में उसने किसी का सहारा स्वीकार न किया। परिणाम यह हुआ कि वह और भी गंदगी में फँसती चली गई।

एक बार उसे अपनी ना समझी पर कुछ पश्चाताप अवश्य हुआ था। और तब उसी पश्चाताप के कारण उसने विवादी का सहारा लेकर अपना भविष्य सँवारने का प्रयास किया था। वह बहुत कुछ संभल भी चुकी थी किन्तु फिर फिसल गई। शेखरन को देखकर, उसकी धन-राशि का अनुमान लगाकर उसका सोया हुआ शैतान एक बार फिर अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। वह स्वयं को भूल गई, विवादी के उपकार को भूल गई और भूल गई अपने पिता की अभिलाषाओं को ! शैतान के संकेत पर वह नृत्य करने लगी ! उसका लक्ष्य बना शेखरन ! वह उसकी बरबादी पर हँसने लगी।

संसार में कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। प्रत्येक काटे का मंत्र

है। शैतान को अपनी शतरंजी चाल में हार खानी पड़ी। किन्तु अन्त तक उसे यही ज्ञात रहा कि वह जीत रहा है। सतांशू और विवादी ने जो चाल चली थी उससे बचना उसके लिए सुगम न था। वह उस चाल में उलझ कर अपनी चाल भी भूल बैठा।

माला का हृदय अपने नाटक का अन्त जानने के लिये धड़क रहा था। उसने विवादी के साथ अपने पिता को जाता देख लिया था। वह उनके लौटने की प्रतीक्षा बड़ी ही व्याकुलता से कर रही थी।

उधर विवादी और ठेकेदार दोनों एक पार्क में जाकर एक तिपाई पर बैठ गये। कुछ क्षण यों ही बीत गये और उनमें से कोई कुछ न बोला। उस समय पार्क में कोई अन्य न था अतः पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी। ऐसा लगता था कि दोनों आदमी कुछ सोच रहे हैं।

अन्त में ठेकेदार ने पूछा 'अब बताओ ?"

विवादी चुप रहा।

"बोलो, अब बोलते क्यों नहीं ?"

"सोच रहा हूँ कि किस प्रकार बात आरम्भ करूँ ?"

"क्यों अब क्या अड़चन आ गई ?"

"अड़चन तो कुछ नहीं। सोचता हूँ कि कहीं आप मेरी बात पर विश्वास न करें !"

"तुम बात कहो मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है।"

"जी मैंने माला से ब्याह करने का विचार छोड़ दिया है।"

"क्यों......"

"मैं विवश हूँ......"

"यह क्यों नहीं कहते कि तुमने मेरे बुढ़ापे का मज़ाक उड़ाया है। तुमसे मुझे कोई दुःख नहीं। ऐसा ही उत्तर मैं पहले भी उन

युवकों से पा चुका हूँ जिनको ब्याह के लिए चुना था। अन्तर केवल इतना है कि तुमने उत्तर देने में देर की और वे तुरन्त दे देते थे।"

"आप मुझे समझने का प्रयास करें।"

"क्यों मुझे बहकाते हो। मैं ठीक ही समझ गया हूँ। उसकी करनी ही ऐसी ही है कि उससे ब्याह करने को कोई भी तैयार न होगा। अभागी मुझे जीवित खाने को जन्मी है।"

"आप न तो ऐसा कहिये और न इतने अधीर ही होइये। जो कुछ आप समझ रहे हैं वह बात नहीं है। मैं अब भी माला से ब्याह करने को तैयार हूँ किन्तु स्थिति ऐसी आ गई है कि मुझे विवश हो ना करना पड़ रहा है।"

"क्या तुम्हारी बहन ने तुम्हारा ब्याह कहीं और ठीक किया है ?"

"जी नहीं।"

"तो फिर वह कौन-सी बात है जो तुम्हें इतना विवश कर रही है ?"

"तो सुनिये···"

इतना कह उसने वह सारी बातें उसे बता दीं। ज्यों-ज्यों वह बता रहा था त्यों-त्यों ठेकेदार के मुख का भाव बदलता जा रहा था। उनके मुख पर वेदना झलकने लगी। बात का अन्त होते-होते उनका मुख ऐसा शोकातुर हो गया जैसे महीनों के बीमार हों। वह विवादी की ओर फटी आंखों से देखते ही रह गये और कुछ बोल न सके। उनके हृदय में उमड़ते पश्चाताप के मेघों को विवादी भली-भांति देख रहा था।

वह बोला "आप चिन्ता न करें।"

"अब चिन्ता करके कर भी क्या सकता हूँ। यह मेरे ही

लाड़-प्यार का परिणाम है जो आज वह इस गंदी खाई में कूद पड़ी। इसमें उसका क्या दोष! होनी होकर रहती है। मैंने स्वयं उसको ठीक मार्ग नहीं दिखाया। अब यदि वह भटक गई है तो इसमें उसका क्या दोष? बेटा माँ-बाप को अपने बच्चों से ही पराजित होना पड़ता है! तुम क्या समझते हो कि आज यदि इसकी माँ जीवित होती तो भी यह ऐसा करती? नहीं, कदापि नहीं। उसकी माँ के जीवित रहते मुझे आज यह दिन न देखना पड़ता। कभी-कभी मेरे हृदय में आता है कि इस नागिन का सिर कुचल दूँ! किन्तु इस मातृहीन की अवस्था पर नेत्र भर आते हैं और तब उसे कुचलने का विचार विवश हो दबा देता हूँ। सोचता हूँ कि मैंने ही अधिक लाड़-प्यार के कारण इसे नष्ट किया है! मुझे ही उसे उबारने का प्रयास करना चाहिये! किन्तु कर नहीं पाता। न जाने यह कुलक्षणी कब मरेगी!"

"आप इतने अधीर न हों। संसार में कोई भी बात असम्भव नहीं। आपने मेरे साथ जो कुछ किया है मैं उसको भूल नहीं सकता। मैंने आपकी भलाई के लिए और माला के लिए एक तरकीब सोची है। माला का ब्याह इसी शुक्रवार को शेखरन से न होकर सतांशू से होगा।"

"माला मान जायेगी?"

"उसे ज्ञात ही कब होगा। शेखरन और सतांशू का वस्त्र एक ही प्रकार का होगा। मंडप में बैठने के पूर्व शेखरन उन्हीं वस्त्रों में सामने आयेगा और तब भाँवर के समय सतांशू होगा। मुख पर फूलों का सेहरा पड़ा होगा। अतः माला उसे पहचान न सकेगी और इस प्रकार सब काम भगवान् की दया से ठीक हो जायगा।"

"भगवान् तुम्हें सफल करें।"

यह बात उन्हें इतनी भाई कि उनका शोकातुर मुख प्रसन्नता से खिल उठा। अधरों पर मुस्कान खेलने लगी। उन्होंने कृतज्ञता से विवादी का हाथ पकड़ लिया।

"चलिये, अब घर चलिये और माला से इस प्रकार बातें कीजिये कि उसकी पसन्द से उन्हें प्रसन्नता है। शेखरन को दामाद के रूप में पाकर वह बहुत प्रसन्न है।"

दोनों जब घर पहुँचे तो माला द्वार पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा करती हुई मिली। विवादी को पूरा विश्वास था कि माला उनकी बातें सुनने के लिए अवश्य उत्सुक होगी। वह माला के निकट पहुँचकर मुस्कराता हुआ भीतर चला गया। माला उसकी मुस्कान का तात्पर्य न समझी। उसके चले जाने के पश्चात् ठेकेदार ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए मुस्करा कर कहा "बेटी मैंने जो कुछ सुना है क्या वह सत्य है ?"

"आपने क्या सुना पिता जी ?"

"अब मुझसे भी छिपाओगी बेटी। विवादी ने सब कुछ बता दिया है !"

"क्या कुछ बता दिया है पिता जी ?"

"हट पगली, तेरा नटखटपन अभी तक नहीं गया ! मेरी बेटी शुक्रवार को शेखरन की पत्नी बनेगी ! घर में बाजे बजेंगे! मेहमान आयेंगे !"

माला ने लज्जा से सिर झुका लिया। उसे पूरा विश्वास हो गया कि विवादी ने उसके साथ विश्वासघात नहीं किया।

उसे चुप देख ठेकेदार ने आगे कहा "विवादी बड़ा अच्छा लड़का है बेटी। कहता था कि मैं बहुत ही निर्धन हूँ। इसलिए ब्याह न करूँगा। किन्तु तुम्हें प्यार करता है। इसीलिए तुम्हारे लिए एक अच्छा वर खोज निकाला। मुझे भी क्या आपत्ति हो सकती थी। मैंने भी हाँ कर दिया।"

इतना कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह भीतर चले गये। माला हक्का-बक्का-सी उन्हें देखती रह गई। एक क्षण के लिए उसके हृदय में इस विचार ने अँगड़ाई ली कि कहीं पिता जी ऊपरी मन से तो नहीं कह रहे हैं। किन्तु दूसरे ही क्षण उसका यह विचार दब गया। उसने सोचा कि कदाचित मेरे अलग होने के शोक से वह आगे नहीं बोल सके हैं। यह सोचते ही उसके नेत्रों में अश्रुकण चमकने लगे।

दिन जाते देर नहीं लगती। शुक्रवार को प्रातःकाल की गाड़ी से शेखरन और सतांशू दोनों आ पहुँचे। खिड़की से शेखरन और माला ने एक-दूसरे को देखा। दोनों मुस्करा पड़े। कितना अन्तर था इन मुस्कराहटों में! एक में व्यंग था तो दूसरी में प्रसन्नता! ठेकेदार ने दोनों का स्वागत अति प्रसन्नता से किया। किन्तु उन्हें अकेले देख उनको आश्चर्य हुआ। विवादी ने उनका तात्पर्य समझते हुए कहा "क्षमा कीजियेगा मैं आपको यह बताना तो भूल ही गया था कि इनको धूम-धाम पसन्द नहीं। इनका कहना है कि इसी इतने व्यय से किसी निर्धन की सहायता कर देना कहीं अच्छा है!"

यह सुनकर ठेकेदार के अधरों पर मुस्कान फैल गई।

सतांशू ने उनसे कहा "यदि ब्याह इसी समय हो जाय तो ठीक है। क्योंकि इन्हें एक आवश्यक कार्य से आज ही वापस जाना है।"

ठेकेदार ने कहा "किन्तु मेहमान आदि तो सन्ध्या तक पधारेंगे।"

विवादी बोला "किन्तु उनके आने से कहीं अधिक मूल्यवान आपके लिए अपने भावी जामाता का ध्यान रखना है। अतः अब देर न कीजिये।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

शहनाई की धुन और भी ऊँची हो उठी। शेखरन ने दूल्हा का ठाट बनाकर एक वार केवल माला को इसलिए दिखा दिया कि वह वस्त्र देखकर उसे पहचान ले। उसे देखकर माला लज्जा से सिकुड़ गई। और तब शेखरन वहाँ से हट गया फिर निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मंडप में सतांशू गया और भाँवरें भी उसी के साथ पड़ीं। माला को कुछ भी ज्ञान न हुआ। भाँवरें समाप्त होते ही दिए हुए वचन के अनुसार उसने शेखरन द्वारा लिखा वह कागज़ हवन-कुण्ड में डाल दिया। भक से वह जल उठा।

सब कुछ समाप्त हो जाने पर ठेकेदार का आशीर्वाद लेने के लिए दोनों आगे बढ़े। दोनों को भारी कंठ से ठेकेदार ने आशीर्वाद दिया। विवादी ने भी अपनी शुभकामनायें प्रकट कीं। यहाँ तक तो माला ने लज्जावश नीचे सिर किये सब कुछ सुना। किन्तु शेखरन की शुभकामनाये सुन वह चौंक पड़ी। उसने नेत्र उठाकर अपने पति को देखा जहाँ शेखरन के स्थान पर सतांशू मुस्करा रहा था।

उसे अपने साथ चली हुई चाल समझने में देर न लगी। पश्चाताप से उसके नेत्रों से अश्रुधारा वह निकली।

शेखरन ने कहा "बहन रोओ नहीं! ऐसी खुशी के अवसर बार-बार नहीं आते। लो यह 'राखी'! अबकी आने वाली प्रथम राखी के त्योहार पर तुम भी, जब मैं आऊँगा तो यह राखी मेरी कलाइयों में बाँध देना।"

माला के हाथ उस राखी को लेने के लिए बढ़ गये। शेखरन ने वह राखी उसके हाथों में पकड़ा दी।

फिर सब लोग बाहर की ओर चल पड़े। ठेकेदार ने बाहर पहुँच कर कहा "बेटी, मेरी एक बात सदा स्मरण रखना। अब

तुम मेरी बेटी होने के अतिरिक्त किसी की पत्नी भी हो। तुम्हारा कर्त्तव्य अपने पति की सेवा करना और अपना घर बसाना है।"

फिर उन्होंने एक बार माला को आशीर्वाद दिया। दोनों सामने खड़ी 'कार' पर बैठ गये। शेखरन भी बैठ गया और तब 'कार' धूल उड़ाती हुई आँखों से ओझल हो गई।

: २३ :

इन सारी घटनाओं का ताना-बाना बुनकर यह जो आपको अभी तक भुलाये रखा सो अब उसका अन्त करने में नेत्रों के समक्ष वह दृश्य आ गया है। मेरे नेत्रों में अश्रुकण मचलने लगे हैं। दृष्टि धुँधली हो गई है। मेरी लेखनी लाख प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ रही है। मेरे नेत्रों से गिरने के लिए अश्रु-कण विद्रोह पर उतर आये हैं। किन्तु मैं उन्हें रोकने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरा हृदय रोने को हो रहा है किन्तु मैं उसे झूठी सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रहा हूं।

यही वह दृश्य है जहाँ से मुझे इस कहानी को आरम्भ करने की प्रेरणा मिली थी। मेरे लिए तो यही दृश्य इस कहानी का आरम्भ और अन्त दोनों हैं। क्योंकि जहाँ से मैंने इसे आरम्भ करने की प्रेरणा पाई थी वहीं पर मुझे इसका अन्त करना पड़ रहा है। अन्तर केवल इतना है कि मैंने इतना बड़ा पर्वत केवल उनकी टूटी-फूटी बातों को सुनकर खड़ा कर दिया है। कहाँ तक उनकी घटनाओं को अपनी कल्पना के रथ पर बिठाकर ठीक मार्ग पर ले जा पाया हूं यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता।

यह कब की बात है यह भी ठीक-ठीक निश्चय के साथ नहीं कह सकता। अनुमान है इस घटना को घटे पर्याप्त समय बीत

चुका है। उन दिनों मैं अपने वार्षिक अवकाश पर फैजाबाद में था। स्टेशन घर से काफी निकट था। सन्ध्या को मैं अक्सर वहाँ घूमने के लिए चला जाया करता था। प्रातःकाल भी कभी-कभी वहीं पहुँच जाया करता था।

इसी प्रकार उस दिन भी मैं प्रातःकाल स्टेशन पर था। वहीं ज्ञात हुआ कि लखनऊ की ओर से आने वाली 'देहली-एक्सप्रेस' कल रात्रि साढ़े नौ बजे के लगभग यहाँ से नौ मील पीछे 'सोहवल' स्टेशन पर पटरी से उतर गई है। मैं घबड़ा उठा। मेरे पास साइकिल थी। नौ मील को कुछ न समझ उसी पर उस ओर चल पड़ा।

लगभग डेढ़ घण्टे के पश्चात् मैं वहाँ पर पहुँच गया। सामने का दृश्य बड़ा ही भयानक था। डिब्बे बुरी तरह टूटे हुए थे। 'पुलीस' ने जब मुझे उसके निकट न जाने दिया तो मैंने बताया कि मेरी बहन इसी गाड़ी से आ रही थी। ऐसा मैंने केवल निकट से देख सकने के कारण कहा। वहाँ केवल सामान के कुछ न मिला। ज्ञात हुआ कि सब 'फैजाबाद अस्पताल' भेज दिए गये हैं। तुरन्त साइकिल उठाकर वापस चल पड़ा।

अस्पताल में भी आज्ञा मिल जाने के कारण मैं घायलों के निकट जा पहुँचा। वहीं पर मैंने अगल-बगल लेटे पूनमी, शेखरन, सुनीती, तथा विवादी को देखा। उनके यह नाम मुझे बाद में ज्ञात हुए थे। चारों को काफी चोट आई थी। किन्तु अभी तक जीवित थे। चारों की आँखों से करूणा टपक रही थी। मेरा हृदय भी भर आया। उस दिन प्रातःकाल यही इतना हुआ। फिर वापस आ गया।

सन्ध्या को सहानुभूति प्रकट करने के लिए मैं फूलों के चार गुच्छे लेकर अस्पताल जा पहुँचा। उस समय वहाँ काफी भीड़

थी। उनका स्थान बदला जा चुका था। बड़ी कठिनाई से उनका पता लगा पाया। एक-एक गुच्छा उनको दे दिया। उनके अधरों पर एक मलीन मुस्कान फैल गई। मैं भी मुस्करा पड़ा किन्तु मुस्कराहट के साथ मेरी आँखों से दो अश्रुकण भी टपक पड़े। इस समय तक उनके जख्मों पर पट्टियाँ बाँधी जा चुकी थीं।

हम लोग यों ही एक-दूसरे को देख रहे थे। इसी क्षण डॉक्टर के साथ पूनमी के माता-पिता आ पहुँचे। एक बार सारे एक-दूसरे को देखकर रो पड़े किन्तु स्वर बाहर न आने दिया। कितना दुःखदाई दृश्य था! यह बिछुड़े हुए इतने दिनों के पश्चात् मिले भी तो किस दशा में। माता-पिता के शरीर में केवल हाड़ रह गया था।

पिता ने रोते हुए कहा "बेटी पूनमी! मुझ पापी को क्षमा कर दो। मेरे ही कारण तुम्हारी यह दशा हुई! मैंने तुम पर झूठे आरोप लगाकर तुम्हारा अपमान किया! तुमको कलंकनी घोषित करने के लिए मैंने क्या न किया! बेटा शेखरन का ब्याह तक रुकवा दिया था···"

शेखरन ने धीरे से कहा "आप क्यों पछता रहे हैं बाबू जी? होनी होकर रहती है।"

वह चौंकते हुए बोले "कौन बेटा शेखरन? तुम भी यहीं हो! तुम भी मुझे क्षमा कर दो बेटा! न जाने मुझ पर कौन-सा भूत सवार था कि मैं तुम्हारी बरबादी के पीछे पड़ गया।"

"मुझसे क्षमा माँगकर आप मुझे पाप का भागी न बनाइये··· देखिये मेरा अन्तिम समय आ गया है। आप मेरी भाभी माँ को अब कोई कष्ट न दीजियेगा···भगवान्···!"

और सचमुच ही उसके प्राण-पखेरू इतना कहते-कहते उड़

गये। डॉक्टर दौड़कर आया। नाड़ी देखकर निराशा प्रकट करते हुए,उन्होंने चादर से उसका मुख ढक दिया।

पूनमी ने सिसकते हुए केवल इतना कहा "पिता जी, मैं भी केवल आपको देखने के लिए अभी तक रुकी हुई थी। आपसे एक प्रार्थना है कि मैंने आपको जो कुछ दु:ख दिया है उसके लिए क्षमा कर दीजिये। आप मेरे पूज्य थे। आपका कहना मुझे अवश्य मानना चाहिये था। दूसरी बात विवादी भइया और सुनीती का ब्याह कर दीजियेगा। दोनों एक-दूसरे को बहुत प्यार करते हैं..." इतना कहते-कहते उसकी आँखें उलट गईं। उसके पिता चिल्लाकर अचेत हो गये।

मैं उन्हें अपने साथ अपने घर लाया। उनकी दशा रात भर में काफी खराब हो गई। वह अपनी चेतना खो बैठे। कभी हँसने लगते और कभी रोने! कभी बकने लगते कि विधवा होने पर तू अपने शेखरन के साथ बिना मेरी आज्ञा के चली गई और मृत्यु के पश्चात् भी तूने उसका साथ न छोड़ा। अब मैं तेरा मुख कभी न देखूँगा। वापस आने की आज्ञा तुझे कभी न दूँगा।"

रात्रि तो किसी प्रकार कटी किन्तु प्रातः मेरी आँख तनिक-सी झपक गई। जब आँख खुली तो उन्हें न देखा। घबड़ा कर उठ बैठा। बाहर निकल कर काफी खोज की, सन्ध्या तक खोजता रहा फिर भी वह न मिले। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उनके साथ उनकी पत्नी का भी कहीं पता न चला।

सन्ध्या को फिर विवादी से मिलने के लिए जा पहुँचा। उस समय तक सुनीती के पिता भी आ चुके थे। वापसी में उन्हें भी अपने यहाँ ले आया। जब तक सुनीती तथा विवादी अच्छे न हो गये वह मेरे ही यहाँ ठहरे रहे।

अब मेरा और विवादी का परिचय हो गया था। उसने अपने पिता के बारे में कई वार पूछा किन्तु मैं प्रत्येक बार उसे सान्त्वना देकर कुछ-न-कुछ बहाना करता रहा। मैंने सोचा कि कहीं शोक से उसकी संभलती दशा फिर न खराब हो जाय।

अब दोनों स्वस्थ हो चुके थे। दो ही एक दिन में अस्पताल से अवकाश मिलने वाला था। और तब यह लोग यहाँ से भी चले जायेंगे। वैसे तो मुझे उनसे किसी भी प्रकार का सरोकार न था। फिर भी न जाने क्यों मैं निश्चित समय पर अस्पताल में फूलों का गुच्छा लेकर पहुँच जाया करता था। अतः अब इसीलिए मुझे दुःख हो रहा था कि इनके चले जाने के पश्चात् मेरा समय कैसे कटेगा! यह भी न सोच सकता था कि यह लोग अभी न अच्छे हों तो अच्छा है।

मेरे लिए सुनीती एक समस्या बनी हुई थी। इसका यह तात्पर्य न था कि मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गया था। जहाँ तक पूनमी तथा उसके पिता की बात से ज्ञात हुआ था कहीं भी सुनीती का कोई विशेष परिचय न मिला था। अतः यह समझ में नहीं आ रहा था कि सुनीती तथा इन लोगों का साथ कैसे हुआ। यह सब जानने के लिए मन प्रत्येक क्षण व्याकुल रहने लगा।

अन्त में जब किसी निश्चय पर न पहुँच सका तो विवादी से पूछने का निश्चय किया। एक क्षण के लिए कुछ शान्ति तो मिली किन्तु दूसरे ही क्षण हृदय में एक प्रश्न और उठा कि यह लोग 'देहली-एक्सप्रेस' से जा कहाँ रहे थे। जब इसका भी कुछ अनुमान न लगा सका तो इन लोगों से पूछ ही लेना निश्चय किया।

सन्ध्या के समय जब अस्पताल गया तो दोनों बातें पूछ ही बैठा। तो उसने संक्षेप में सारी घटना बताते हुए कहा "शेखरन को माला की चाल से बचाने के लिए सतांशू का उससे ब्याह, फिर शेखरन का ब्याह सुनीती के साथ पक्का करने के बारे में बताते हुए आगे कहा कि इसी बीच जबकि अभी दीदी का स्वास्थ्य काफी गिर गया तो उन्होंने सुनीती को व्याह के पूर्व पुनः एक बार देखने को बुलवाया। उसके आजाने के पश्चात् उन्होंने पिता जी के पास चलने की इच्छा प्रकट की और कहा कि उनसे अपने किये की क्षमा मागूँगी और शेखरन तथा सुनीती का ब्याह उन्हीं के हाथों से कराऊँगी। इसीलिए हम चल पड़े थे। इस गाड़ी पर तो हम भूल से बैठ गये थे या यों समझिये कि मृत्यु भुलावा देकर हमें ले आई।"

सारी बातें सुनने के पश्चात् वहीं बैठे-बैठे मेरे हृदय में यह विचार आया कि यदि इन सारी बातों को इधर-उधर करके एक उपन्यास का रूप दे सकूँ, तो कैसा रहे! उस क्षण तो इस विचार को मन-ही-मन दबा दिया था किन्तु समय के साथ मेरी यह इच्छा प्रबल होती गई। और तब एक दिन लिखने ही तो बैठ गया।

लिखने में ठीक-ठीक कहाँ तक सफल हो पाया हूँ नहीं कह सकता। अस्पताल से जाने के पश्चात् उन दोनों का कुछ भी समाचार न मिला। बहुत खोजने का प्रयास किया किन्तु सफल न हुआ।

अतः उपन्यास का अन्त भी अपूर्ण ही है। विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि सुनीती तथा विवादी का ब्याह हुआ या नहीं। या फिर दोनों इस समय किस दशा में हैं। फिर भी

भगवान् से प्रार्थना है कि वह दोनों जहाँ भी रहें सुखी रहें। और साथ उनसे प्रार्थना है कि यदि वह इस उपन्यास को पढ़ तो मुझे अवश्य सूचित करें। नाम इत्यादि बदल दिया है अत: उन्हें तनिक कठिनाई भी हो सकती है। समझ जाने पर अवश्य मिलें या मिलने का अवसर दें। तभी इस उपन्यास का अन्त विश्वास के साथ लिख सकूंगा।